* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

वर्ष ९७

संख्या ४

गीताप्रेस, गोरखपुर

भक्त सूरदास

वीरवेषमें श्रीहनुमान्‌जी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं॥
तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ। धरमसील पहिं जाहिं सुभाएँ॥
[रामचरितमानस, बालकाण्ड]

वर्ष ९७

गोरखपुर, सौर वैशाख, वि० सं० २०८०, श्रीकृष्ण-सं० ५२४९, अप्रैल २०२३ ई०

संख्या ४

पूर्ण संख्या ११५७

श्रीहनुमत्-ध्यान

महाशैलं समुत्पाट्य धावन्तं रावणं प्रति॥
लाक्षारसारुणं रौद्रं कालान्तकयमोपमम्।
ज्वलदग्निसमं जैत्रं सूर्यकोटिसमप्रभम्॥
अङ्गदाद्यैर्महावीरैर्वेष्टितं रुद्ररूपिणम्।
तिष्ठ तिष्ठ रणे दुष्ट सृजन्तं घोरनिःस्वनम्॥

हनुमान्‌जी एक बहुत बड़ा पर्वत उखाड़कर रावणकी ओर दौड़ रहे हैं। वे लाक्षा महावरके रंगके समान अरुणवर्ण हैं। काल, अन्तक तथा यमके समान भयंकर जान पड़ते हैं। उनका तेज प्रज्वलित अग्निके समान हैं। वे विजयशील तथा करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी हैं। अंगद आदि महावीर उन्हें चारों ओरसे घेरकर चलते हैं। वे साक्षात् रुद्रस्वरूप हैं। भयंकर सिंहनाद करते हुए वे रावणसे कहते हैं—अरे ओ दुष्ट! युद्धमें खड़ा रह, खड़ा तो रह। [नारदपुराण]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण १,८०,०००)

कल्याण, सौर वैशाख, वि० सं० २०८०, श्रीकृष्ण-सं० ५२४९, अप्रैल २०२३ ई०, वर्ष ९७—अंक ४

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- श्रीहनुमत्-ध्यान	३
२- सम्पादकीय	५
३- कल्याण	६
४- भक्त सूरदास [**आवरणचित्र-परिचय**]	७
५- ईश्वरकी दया और उनका प्रेम (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	९
६- असत्‌की कमाई नष्ट हो जाती है [**प्रेरक-प्रसंग**]	११
७- दर्शनीय आश्चर्य (साधुवेशमें एक पथिक)	१२
८- भगवान्‌का स्मरण कैसे करें? (नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१३
९- श्रीराम-तत्त्व (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	१४
१०- विचार करें [**साधकोंके प्रति**] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१५
११- अभिलाषा [**कविता**] (श्रीबृजमोहनजी बेरीवाला) [प्रेषक—श्रीगौरांगजी अग्रवाल]	१७
१२- गीताका भक्तियोग और मीराकी प्रेम-साधना (आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)	१८
१३- मृत्युसे कौन बचा? [**बोधकथा**]	२१
१४- जीवनकी प्रथम आवश्यकता—अभय (श्रीशिवानन्दजी)	२२
१५- 'सीय राममय सब जग जानी' (श्रीसनातनकुमारजी वाजपेयी 'सनातन')	२५
१६- लोभ—विनाशका कारण [**बोधकथा**]	२७
१७- ईश्वर (श्रीमोहनलालजी पारख)	२८
१८- श्रीयमुनाजी—परिचय एवं माहात्म्य (श्रीशरदजी अग्रवाल)	३१
१९- वैराग्यभावका आधान (श्रीमती डॉ० रंजनाजी शर्मा)	३५
२०- आसुरीसम्पदाके नाशके उपाय	३६
२१- गेहूँके पौधेमें रोगनाशक ईश्वरप्रदत्त अपूर्व गुण (श्रीचिन्तामणिजी पाण्डेय)	३७
२२- अपरिग्रही सन्त स्वामी श्रीप्रकाशानन्दजी [**सन्त-चरित**] (श्रीभरतजी दीक्षित)	३९
२३- सिद्धियोंका आधार—वाक्-संयम [**बोधकथा**]	४१
२४- चरक-संहितामें गोघृतकी चिकित्सकीय उपयोगिता [**गो-चिन्तन**] (प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़)	४२
२५- आश्रम पहले ही बन गया [**बोधकथा**]	४३
२६- सुभाषित-त्रिवेणी	४४
२७- व्रतोत्सव-पर्व [**ज्येष्ठमासके व्रत-पर्व**]	४५
२८- कृपानुभूति	४६
२९- पढ़ो, समझो और करो	४७
३०- मनन करने योग्य	५०

चित्र-सूची

१- भक्त सूरदास	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- वीरवेषमें श्रीहनुमान्‌जी	(,,)	मुख-पृष्ठ

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / एकवर्षीय शुल्क ₹300 मासिक अंक साधारण डाकसे
पञ्चवर्षीय शुल्क ₹2500 सभी अंक रजिस्ट्रीसे / पञ्चवर्षीय शुल्क ₹1500 मासिक अंक साधारण डाकसे
विदेशमें Air Mail शुल्क वार्षिक US$ 50 (₹4,000) / Cheque Collection Charges 6 $ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका** आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**, सहसम्पादक—**कृष्णकुमार खेमका**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242/244** | **WhatsApp : 9648916010, 8188054404**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—273005, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता हेतु gitapress.org के **Kalyan** पर click करके **Subscribe** option पर click करें।

॥ श्रीहरिः ॥

वर्तमान कालमें वातावरण और संसाधन तो दूषित हो ही चले हैं, अनेक प्रकारका प्रदूषण चित्तवृत्तिको भी प्रदूषित करता रहता है। ऐसेमें यम-नियम आदिका यथावत् पालन करते हुए शास्त्रनिर्दिष्ट मार्गोंकी साधना असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य प्रतीत होती है।

भगवन्नामका आश्रय इस कठिन समयमें साधकोंका जीवन-सर्वस्व है। भगवन्नामके आश्रित होकर जो समय अपने जीवन-व्यवहारमें लगता है, वह भी साधनाका ही अंग बन जाता है, यदि हम सजग होकर सांसारिक व्यवहार करनेका अभ्यास बढ़ायें। प्रायः कुशलताका मापदण्ड यह मान लिया जाता है कि व्यक्ति कितनी जल्दी बिना भूल किये कार्य सम्पन्न कर सकता है। यह मशीनीपन हमारे सजग होनेकी क्षमताको धीरे-धीरे नष्ट कर देता है। सजग होना हमारे जीवन्त होनेका पहला प्रमाण है।

गोस्वामी तुलसीदासजीका एक दोहा इस सन्दर्भमें याद आता है—

तुलसी 'रा' के कहत ही निकसत पाप पहार।
पुनि आवन पावत नहीं देत 'म' कार किंवार॥

'रा' कहनेपर जो मुँह खुलता है, तब पापोंका गुबार बाहर निकल जाता है और 'म' कहनेपर जो ओठ बन्द हो जाते हैं, मानो किवाड़ बन्द हो गये। इससे सरल और क्या साधन चाहिये? इसमें कोई विधि-विधान भी नहीं है—'नास्ति अस्य विधिः॥' उठते-बैठते, सोते-जागते जब जितना बने भगवन्नामका आश्रय लेना चाहिये।

—सम्पादक

कल्याण

याद रखो—जबतक तुमको विषय-भोगोंमें सुखकी प्रतीति है और जबतक तुम्हारे मनमें विषयभोगोंकी कामना है, तबतक तुम यदि कभी भगवान्‌का भजन-स्मरण करोगे, तो वह भगवान्‌के लिये न होकर विषय-भोगोंके लिये ही होगा। भगवान्‌को तो तुम्हारा मन भोगोंकी प्राप्तिमें साधन मानेगा। और यदि मनोऽनुकूल भोगोंकी प्राप्ति नहीं होगी, तो तुम भगवान्‌का भजन-स्मरण छोड़कर किसी दूसरे साधनकी शरणमें चले जाओगे।

याद रखो—जो भगवान्‌के भक्त हैं, भगवान्‌में समस्त सुखोंको देखते हैं, वे शास्त्रानुकूल विषयोंका सेवन भी करते हैं, तो वह भगवान्‌के लिये ही करते हैं। जो विषयभोग भगवान्‌के अनुकूल नहीं होते या भगवान्‌के भजन-स्मरणमें जरा भी बाधक प्रतीत होते हैं, उनको वे वैसे ही तुरन्त छोड़ देते हैं, जैसे मनुष्य विष-मिले भोजनको छोड़ देता है, फिर चाहे वे विषयभोग कितने ही सुन्दर, सरस, मधुर और प्रिय क्यों न हों।

याद रखो—विषयी भगवान्‌का सेवन विषयके लिये करता है, उसका मन विषयभोगप्रधान है और भगवान् गौण। और भक्त विषयका सेवन भी भगवत्-प्रीतिके लिये ही करता है, उसके मन भगवान् ही सब कुछ हैं, विषय तो तभी प्रयोजनीय हैं, जब उनके द्वारा भगवान्‌की सेवा होती हो।

याद रखो—तुम्हें मनुष्य-शरीर विषयोंके स्मरण, विषयोंके संग्रह और विषयोंके सेवनके लिये नहीं मिला है। विषय-सेवनके लिये तो मनुष्यके सिवा अन्य सब शरीर हैं ही। यह शरीर तो केवल भगवान्‌के चिन्तन, भगवद्भावोंके संग्रह और भगवान्‌की सेवाके लिये ही मिला है। मानवकी मानवता जीवनके भगवान्‌की ओर लग जानेमें ही है। नहीं तो, जो केवल विषय-सेवनमें लगा रहता है, वह मानव-शरीरधारी पशु ही है।

याद रखो—जब भगवान्‌का भजन ही जीवनका मुख्य तथा अनन्य कर्तव्य है, तब उसे खूब मन लगाकर ही करो; क्योंकि उसके बिना तुम्हारा सब कुछ करना-पाना सर्वथा व्यर्थ है। जगत्‌के कर्म तो दिखावेके लिये नाट्यवत् ही करो, न तो उनमें जरा भी आसक्त होओ तथा न जगत्‌के किसी भी प्राणी-पदार्थमें तनिक भी ममता करो। पर भगवान्‌का भजन तो भजनमें अत्यन्त आसक्त होकर करो और अपनी सारी ममता सब जगहसे बटोरकर एकमात्र भगवान्‌में ही लगा दो। यह दृढ़ निश्चय कर लो कि एकमात्र भगवान् ही तुम्हारे हैं। जगत्‌के प्राणी-पदार्थोंके साथ तुम्हारा जो प्रेमका सम्बन्ध है, वह केवल भगवान्‌के सम्बन्धसे ही है।

याद रखो—भगवान्‌का सम्बन्ध ही सच्चा और सदा रहनेवाला सम्बन्ध है। तुम भगवान्‌मेंसे आये हो, भगवान्‌में हो, भगवान्‌में ही रहोगे। तुम उनके सनातन अंश हो। उनसे तुम्हारा सम्बन्ध न कभी टूटा, न टूट सकता है। तुम मोहवश अपने इस नित्य सत्य भगवत्-सम्बन्धको भूल गये हो। इसीसे भगवान्‌को छोड़कर अनित्य और दुःखदायक विषय-भोगोंकी ओर दौड़ रहे हो और उनके संग्रह तथा उपभोगमें ही जीवनकी कृतार्थता मानते हो। इसीसे बार-बार तुम्हारा सच्चे सुखसे सदा बिछोह रहता है और एक दुःखसे दूसरे दुःखमें जाते रहते हो। एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जाते हो। अनवरत जन्म-मृत्युके चक्रमें पड़े भटकते रहते हो। अपने स्वरूपको याद करो। भगवान्‌के साथ अपने नित्य-सत्य सम्बन्धकी स्मृति करो। विषयोंका स्मरण छोड़कर भगवन्‌का अनन्य और अखण्ड स्मरण करो। तुम्हें भगवान् मिलेंगे, तुम सच्चे और अखण्ड परमसुखको प्राप्तकर सुखस्वरूप बन जाओगे और तुम्हारा मानव-जीवन सच्चा मानव-जीवन बनकर सफल हो जायगा। तुम्हारे जन्मसे, जीवनसे धरती धन्य होगी, विश्व पावन होगा। 'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

भक्त सूरदास

दिल्लीसे थोड़ी दूरपर सीही गाँवमें एक निर्धन ब्राह्मणके घर संवत् १५३५ वि० में वैशाख शुक्ल पंचमीको धरतीपर एक दिव्य ज्योति बालक सूरदासके रूपमें उतरी, चारों ओर शुभ्र प्रकाश फैल गया; ऐसा लगता था कि कलिकालके प्रभावको कम करनेके लिये भगवती भागीरथीने अपना कायाकल्प किया है। गाँववाले और शिशुके माता-पिता आश्चर्यचकित हो गये, परंतु शिशुके नेत्र बन्द थे, इसलिये उनके पिता और घरके अन्य लोग भी उनकी उपेक्षा ही करते थे। धीरे-धीरे उनके अलौकिक और पवित्र संस्कार जाग उठे, उनके मनमें वैराग्यका भाव उदय हो गया। सूर घरसे निकल पड़े, गाँवसे थोड़ी दूरपर एक रमणीय सरोवरके किनारे पीपलवृक्षके तले वे रहने लगे। वे लोगोंको शकुन बताते थे और विचित्रता तो यह थी कि उनकी बतायी बातें सही उतरती थीं। इससे उनकी मान-प्रतिष्ठा और वैभवमें नित्यप्रति वृद्धि होने लगी। सूरदासकी अवस्था इस समय अठारह सालकी थी। उन्होंने विचार किया कि जिस माया-मोहसे उपराम होनेके लिये मैंने घर छोड़ा, वह तो पीछा ही करता आ रहा है। भगवान्‌के भजनमें विघ्न होते देखकर सूरने उस स्थानको छोड़ दिया और वे मथुरा चले आये, परंतु उनका मन वहाँ भी नहीं लगा। उन्होंने गऊघाटपर रहनेका विचार किया। पहले वे कुछ समयतक रेणुकाक्षेत्रमें रहे, वहाँ उन्हें सन्तों और महात्माओंका सत्संग मिला; पर उस पवित्र स्थानमें उन्हें एकान्तका अभाव बहुत खटकता था। रुनकतासे तीन मील दूर पश्चिमकी ओर यमुनातटपर गऊघाटमें आकर वे काव्य और संगीतका अभ्यास करने लगे। सूरदासकी एक महात्माके रूपमें ख्याति चारों ओर फैलने लगी।

पुष्टिसम्प्रदायके आदि आचार्य महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्य अपने निवास-स्थान अड़ैलसे व्रजयात्राके लिये संवत् १५६० वि०में निकल पड़े। महाप्रभुने विश्रामके लिये गऊघाटपर ही अस्थायी निवास घोषित किया। सूरदासने वल्लभाचार्यके दर्शनकी उत्कट इच्छा प्रकट की, आचार्य भी उनसे मिलना चाहते थे। पूर्वजन्मके शुद्ध तथा परम पवित्र संस्कारोंसे अनुप्राणित होकर सूरने आचार्यके दर्शनके लिये पैर आगे बढ़ा दिये, वे चल पड़े। उन्होंने दूरसे ही चरण-वन्दना की, हृदय चरण-धूलि-स्पर्शके लिये आकुल हो उठा। आचार्यने सूरके अंग-अंग भगवद्भक्तिकी रसामृतलहरीमें निमग्न हो गये। सूरने विनयके पद सुनाये, भक्तने भगवान्‌के सामने अपने-आपको पतितोंका नायक घोषितकर उनकी कृपा प्राप्त करना चाहा था—यही उस पदका अभिप्राय था। आचार्यने कहा, 'तुम सूर होकर इस तरह क्यों घिघियाते हो? भगवान्‌का यश सुनाओ, उनकी लीलाका वर्णन करो।' सूर आचार्यचरणके इस आदेशसे बहुत प्रोत्साहित हुए। उन्होंने विनम्रतापूर्वक कहा कि 'मैं भगवान्‌की लीलाका रहस्य नहीं जानता। आचार्यने श्रीमद्भागवतकी स्वरचित सुबोधिनी टीका सुनायी, उन्हें भगवान्‌की लीलाका रस मिला, वे लीला-सम्बन्धी पद गाने लगे। आचार्यने उन्हें दीक्षा दी। वे तीन दिनोंतक गऊघाटपर रहकर गोकुल चले आये, सूरदास उनके साथ थे। गोकुलमें सूरदास नवनीतप्रियका नित्य दर्शन करके लीलाके सरस पद रचकर उन्हें सुनाने लगे। आचार्य वल्लभके भागवत-पारायणके अनुरूप ही सूरदास लीलाविषयक पद गाते थे। आचार्यके साथ सूरदासजी गोकुलसे गोवर्धन चले आये, उन्होंने श्रीनाथजीका पूजन किया और सदाके लिये उन्हींकी चरण-शरणमें जीवन बितानेका शुभ संकल्प कर लिया। श्रीनाथजीके प्रति उनकी अपूर्व भक्ति थी, आचार्यकी कृपासे वे प्रधान कीर्तनकार नियुक्त हुए।

गोवर्धन आनेपर सूरने अपना स्थायी निवास चन्द्रसरोवरके सन्निकट परासोलीमें स्थिर किया। वे वहाँसे प्रतिदिन श्रीनाथजीके मन्दिर जाते थे और नये-नये पद रचकर उन्हें बड़ी श्रद्धा और भक्तिसे समर्पित करते थे। धीरे-धीरे व्रजके अन्य सिद्ध महात्मा और पुष्टिमार्गके भक्त कवि नन्ददास, कुम्भनदास, गोविन्ददास आदिसे उनका सम्पर्क बढ़ने लगा। भगवद्भक्तिकी कल्पलताकी शीतल छायामें बैठकर उन्होंने सूरसागर-जैसे विशाल ग्रन्थकी रचना कर डाली। आचार्य वल्लभके लीलाप्रवेशके बाद गोसाईं विट्ठलने अष्टछापकी स्थापना की। जिसमें वे प्रमुख कवि घोषित हुए। कभी-कभी परासोलीसे वे नवनीतप्रियके दर्शनके लिये गोकुल भी जाया करते थे।

एक बार संगीत-सम्राट् तानसेन अकबरके सामने सूरदासका एक अत्यन्त सरस और भक्तिपूर्ण पद गा रहे थे। बादशाह पदकी सरसतापर मुग्ध हो गये। उन्होंने

आवश्यक राजकार्यसे मथुरा भी जाना था। वे तानसेनके साथ सूरदाससे संवत् १६२३ वि० में मिले। उनकी सहृदयता और अनुनय-विनयसे प्रसन्न होकर सूरदासने पद गाया, जिसका अभिप्राय यह था कि 'हे मन! तुम माधवसे प्रीति करो।' अकबरने परीक्षा ली, उन्होंने अपना यश गानेको कहा। सूर तो राधा-चरण-चारण-चक्रवर्ती श्रीकृष्णके गायक थे, वे गाने लगे—

नाहिन रह्यौ हिय महँ ठौर।
नंदनंदन अछत कैसें आनिए उर और॥

अकबर उनकी निःस्पृहतापर मौन हो गये। भक्त सूरके मनमें सिवा श्रीकृष्णके दूसरा रह ही किस तरह पाता। उनका जीवन तो रासेश्वर, लीलाधाम श्रीनिकुंजनायकके प्रेममार्गपर नीलाम हो चुका था।

सूरदास एक बार नवनीतप्रियके मन्दिर गोकुल गये, वे उनके शृंगारका ज्यों-का-त्यों वर्णन कर दिया करते थे। विट्ठलनाथके पुत्र गिरधरजीने गोकुलनाथके कहनेसे उस दिन सूरदासकी परीक्षा ली। उन्होंने भगवान्‌का अद्भुत शृंगार किया, वस्त्रके स्थानपर मोतियोंकी मालाएँ पहनायीं। सूरने शृंगारका अपने दिव्य चक्षुसे दर्शन किया और वे गाने लगे—

देखे री हरि नंगम नंगा।
जलसुत भूषन अंग बिराजत, बसन हीन छबि उठत तरंगा॥
अंग अंग प्रति अमित माधुरी, निरखि लजित रति कोटि अनंगा।
किलकत दधिसुत मुख ले मन भरि, सूर हँसत ब्रज जुवतिन संगा॥

भक्तकी परीक्षा पूरी हो गयी, भगवान्‌ने अन्धे महाकविकी प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रखी, वे भक्तके हृदय-कमलपर नाचने लगे, महागायककी संगीत-माधुरीसे रासरसोन्मत्त नन्दनन्दन प्रमत्त हो उठे, कितना मधुर वर्णन था उनके स्वरूपका!

उन्होंने पचासी सालकी अवस्थामें गोलोक प्राप्त किया। एक दिन अन्तिम समय निकट जानकर सूरदास श्रीनाथजीकी केवल मंगला-आरतीमें गये। वे नित्य श्रीनाथजीकी प्रत्येक झाँकीमें जाते थे। गोसाईं विट्ठलनाथ शृंगार-झाँकीमें उन्हें अनुपस्थित देखकर आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने श्यामसुन्दरकी ओर देखा, प्रभुने अपने परम भक्तका पद नहीं सुना था, सूरदासजी उन्हें नित्य पद सुनाया करते थे। कुम्भनदास, गोविन्ददास आदि चिन्तित हो उठे। गोसाईंजीने करुण स्वरसे कहा—'आज पुष्टिमार्गका जहाज जानेवाला है। जिसको जो कुछ लेना हो, वह ले ले।' उन्होंने भक्तमण्डलीको परासोली भेज दिया और राजभोग समर्पितकर वे कुम्भनदास, गोविन्ददास और चतुर्भुजदास आदिके साथ स्वयं गये। इधर सूरकी दशा विचित्र थी, परासोली आकर उन्होंने श्रीनाथजीकी ध्वजाको नमस्कार किया। उसीकी ओर मुख करके चबूतरेपर लेटकर सोचने लगे कि यह काया पूर्णरूपसे हरिकी सेवामें नहीं प्रयुक्त हो सकी। वे अपने दैन्य और विवशताका स्मरण करने लगे। समस्त लौकिक चिन्ताओंसे मन हटाकर उन्होंने श्रीनाथजी और गोसाईंजीका ध्यान किया। गोसाईंजी आ पहुँचे, आते ही उन्होंने सूरदासका कर अपने हाथमें ले लिया। महाकविने उनकी चरण-वन्दना की। सूरने कहा कि 'मैं तो आपकी ही प्रतीक्षा कर रहा था।' वे पद गाने लगे—

खंजन नैन रूप रस माते।
अतिसय चारु चपल अनियारे, पल पिंजरा न समाते।
चलि चलि जात निकट स्त्रवननि के, उलटि पलटि ताटंक फँदाते।
सूरदास अंजन गुन अटके, नतरु अबहिं उड़ि जाते।

अन्त समयमें उनका ध्यान युगलस्वरूप श्रीराधामनमोहनमें लगा हुआ था। श्रीविट्ठलनाथके यह पूछनेपर कि 'चित्तवृत्ति कहाँ है?' उन्होंने कहा कि 'मैं राधारानीकी वन्दना करता हूँ, जिनसे नन्दनन्दन प्रेम करते हैं।'

चतुर्भुजदासने कहा कि 'आपने असंख्य पदोंकी रचना की, पर श्रीमहाप्रभुका यश आपने नहीं वर्णन किया?' सूरकी गुरु-निष्ठा बोल उठी कि 'मैं तो उन्हें साक्षात् भगवान्‌का रूप समझता हूँ, गुरु और भगवान्‌में तनिक भी अन्तर नहीं है। मैंने तो आदिसे अन्ततक उन्हींका यश गाया है।' उनकी रसनाने गुरु-स्तवन किया

भरोसो दृढ़ इन चरननि केरो।
श्रीबल्लभ नख चन्द्र छटा बिनु सब जग माझ अँधेरो।
साधन नाहिं और या कलि में जासों होय निबेरो।
'सूर' कहा कहै द्विबिधि आँधरो बिना मोल को चेरो।

चतुर्भुजदासकी विशेष प्रार्थनापर उन्होंने उपस्थित भगवदीयोंको पुष्टिमार्गके मुख्य सिद्धान्त संक्षेपमें सुनाये। उन्होंने कहा कि 'गोपीजनोंके भावसे भावित भगवान्‌के भजनसे पुष्टिमार्गके रसका अनुभव होता है। इस मार्गमें केवल प्रेमकी ही मर्यादा है।' सूरदासने श्रीराधाकृष्णकी रसमयी छविका ध्यान किया और वे सदाके लिये ध्यानस्थ हो गये।

ईश्वरकी दया और उनका प्रेम

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

ईश्वर दयालु हैं, प्रेमी हैं। उनकी दया और प्रेमसे सब स्थान परिपूर्ण हो रहे हैं। अणु-अणुमें उनकी दया और प्रेमको देख-देखकर हमें मुग्ध होना चाहिये। हर समय प्रसन्न रहना चाहिये। इसको साधन बना लेना चाहिये। इसमें न कुछ परिश्रम है और न किसी अन्य चीजकी आवश्यकता है।

ईश्वरकी दया और प्रेम अपार है—असीम है। यह बात मनमें है तो ईश्वरकी स्मृति निरन्तर रहनी चाहिये। सब जगह ईश्वरकी दया और प्रेम वैसे ही परिपूर्ण है, जैसे बादलमें सब जगह जल परिपूर्ण है। दया और प्रेमका बड़ा भारी समुद्र उमड़ा हुआ है—भरा हुआ है। उसमें अपने-आपको डुबो दे। चारों तरफ बाहर-भीतर, नीचे-ऊपर सर्वत्र ईश्वरकी दया और प्रेमका समुद्र परिपूर्ण है। जैसे सूर्यकी धूपमें हम बैठते हैं—हमारे चारों ओर धूप-ही-धूप पूर्ण है, उसी तरह परमात्माकी दया और प्रेम सब जगह पूर्ण है। सूर्यका प्रकाश तो केवल बाहर ही है, किंतु दया और प्रेम तो बाहर-भीतर सब जगह पूर्ण हो रहे हैं। इस प्रकार देख-देखकर हर समय मुग्ध होते रहना चाहिये। अहा! हम धन्य हैं! हमपर ईश्वरकी कितनी भारी दया है! सब देशमें, सब कालमें, सब वस्तुमें ईश्वरकी दयाका दर्शन करें और इसी प्रकार प्रेम बढ़ावें।

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५। २९)

ईश्वर परम सुहृद् हैं। सुहृद्का अर्थ क्या है? दया और प्रेम जिसमें हो, उसका नाम सुहृद् है। उसकी दया और प्रेम अनन्त है, अपार है। अणु-अणुमें, जर्रे-जर्रेमें व्याप्त हो रहे हैं। एक बादशाहकी दया हो जाती है, तो आनन्दका ठिकाना नहीं रहता। एक महात्माकी दया हो जाती है तो आनन्द समाता नहीं, फिर ईश्वरकी दया तो अपार है। फिर क्या बात है? (सहजमें ही हमारी सकते हैं।) हर समय यह भाव जाग्रत् रहना चाहिये अहा! ईश्वरकी हमपर कितनी दया है। ईश्वरका हमपर कितना प्रेम है। सबपर समानभावसे अपार दया है। जब इतनी दया है, तब हमको भय, चिन्ता, शोक करनेकी क्या आवश्यकता है। हम चिन्ता-भय करें—यह तो हमारी मूर्खता है। भय किसका? न वहाँ भय है, न चिन्ता है, न मोह है। यह हमारी बेसमझी थी—हम जानते नहीं थे कि प्रभु इतने दयालु हैं। अब कहाँ चिन्ता? कहाँ भय? कहाँ शोक? प्रभुकी अपार दया है यह साधन बना लें। हर समय खयाल रखें, मनसे इस प्रकार अनुभव करें तो उसी समय शान्ति और आनन्दका भण्डार भरा पड़ा है। इस साधनसे थोड़े ही कालमें साक्षात् प्रभुकी प्राप्ति हो जाय।

एक समृद्धिशाली पुरुष है, स्वप्नमें भिखारी बन गया—इसलिये दुखी हो रहा है। किंतु जागनेपर दुःख कहाँ? दुःख था ही नहीं, उसने बिना हुए ही दुःख मान लिया। इसी तरह हम भी बेसमझीके कारण ही दुखी हो रहे हैं। ईश्वरकी दया और प्रेम तो सब जगह पूर्ण हो ही रहे हैं। हम मानते नहीं तभी हम दुखी होते हैं। पर हम नहीं मानते हैं, उस समय भी ईश्वरकी दया तो है ही। बस, मान लें तो आनन्द-ही-आनन्द है। ऐसा अमृतमय आनन्द प्रत्यक्ष है, इसमें कुछ भी शंका नहीं है, फिर उसे क्यों छोड़ते हैं? '**प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्**' प्रत्यक्ष आनन्दका अनुभव हो रहा है, फिर उसमें प्रमाण क्या? केवल मान लेना ही साधन है। जप या ध्यान—कुछ भी करनेकी बात नहीं कही। केवल मान लो, बस इतना ही करना है। वह परम सुहृद् है, जिसमें अपार दया हो—हेतुरहित प्रेम हो। भगवान्की दया अपार है वह अपार दयादृष्टिसे हमें देख रहा है, फिर किस बातकी चिन्ता है। माता स्नेहसे बच्चेको पकड़कर यदि फोड़ेको चिरवा रही है, तो चिन्ता क्यों करनी चाहिये

बालकपन है। समझदार तो रोता भी नहीं। हमपर कोई भी दुःख आवे तो समझना चाहिये—हमारी माँ, भगवान् हमें सुखी करनेके लिये, पवित्र करनेके लिये गोदमें लेकर चिरवा रहे हैं।

कितनी दयाभरी दृष्टि है। अपार दयाकी छटा छायी हुई है। कोई स्थान उसकी दया और प्रेमसे खाली नहीं। उसकी दया, प्रेम सर्वत्र परिपूर्ण हो रहे हैं। वे दर्शन देनेको तैयार हैं। वे सब प्राणियोंके सुहृद् हैं। यदि पूरा विश्वास हो जाय कि भगवान् हमें दर्शन देंगे, तो उसी क्षण दर्शन देना पड़ेगा—एक क्षण भी वे नहीं रुक सकेंगे।

नास्तिक पुरुषोंको तो विश्वास नहीं है। वे समझते हैं ईश्वर है या नहीं। जिनका होनेमें विश्वास है, वे समझते हैं कि पता नहीं मिलते हैं या नहीं। दूसरे यह समझते हैं कि मिलते तो हैं, पर बहुत भजन-ध्यान करनेसे मिलते हैं—यह भी भूल है। भगवान् बड़े ही दयालु हैं। यदि भजन-ध्यान कराकर मिलते हैं, तो फिर दयालु क्या हुए? यदि हम दृढ़ विश्वास कर लें कि वे तो बड़े ही दयालु हैं, उनके न मिलनेमें हमारी बेसमझी ही कारण है। हमको मिलेंगे, जरूर मिलेंगे और आज ही मिलेंगे—ऐसा दृढ़ निश्चय कर लें तो आज ही मिल जायँगे, इसमें तनिक भी शंका नहीं है।

जो कुछ भी ईश्वरका विधान है, उसमें हित ही भरा है। कहीं भी अहित दीखता है तो यह अपनी समझकी कमी है। अणु-अणुमें सब समय, सब देश और सब वस्तुमें अपना हित ही देखे, यह देखना ही सर्वत्र उसकी दयाको देखना है। विश्वासपूर्वक मान लें, बस, फिर काम खतम। उसके आनन्दका ठिकाना ही नहीं है। प्रत्यक्ष शान्ति और आनन्द है। इन बातोंके पढ़ने-सुननेमात्रसे ही महान् शान्ति और आनन्द होते हैं तो फिर बार-बार मनन करनेसे बड़ी भारी शान्ति और आनन्दका अनुभव क्यों नहीं होगा?

ईश्वरकी दया सर्वत्र है। सर्वत्र उसके प्रेमकी छटा छा रही है। फिर हम क्यों भय करें। वह प्रेमका महान् हैं—मग्न हो रहे हैं। यह भाव जब दृढ़ हो जायगा, तब शान्ति और आनन्दकी बाढ़ प्रत्यक्ष दीखने लगेगी। फिर प्रेम आनन्दके रूपमें परिणत हो जायगा, वही परमात्माका स्वरूप है। परमात्मा आनन्दमय है। परमात्मा प्रेममय है वह प्रेम ही प्रत्यक्ष प्रकट होकर दर्शन देता है। इस समय वह प्रेम अदृश्य है। जब प्रेम हो जाता है, तो भगवान् प्रत्यक्ष मूर्तिमान् होकर प्रकट हो जाते हैं। भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णका स्वरूप प्रेमका ही पुंज है। प्रेमके सिवा दूसरी वस्तु नहीं है। प्रेम ही आनन्द है और आनन्द ही प्रेम है। एक ही चीज है। भगवान् सगुण-साकारकी उपासना करनेवालोंके लिये प्रेममय बन जाते हैं और निर्गुण-निराकारकी उपासना करनेवालोंके लिये आनन्दमय बन जाते हैं।

संसारमें भी यह बात है कि जिससे जितना प्रेम बढ़ेगा, उससे उतना ही अधिक आनन्द होगा। यही बात इस विषयमें है। वह सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही भक्तोंका प्रेमानन्द है और वही पूर्णब्रह्म परमात्मा मूर्तिमान् होकर प्रकट होते हैं।

तुलसीदासजी कहते हैं—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना।

हरि सब जगह परिपूर्ण हैं। वे प्रेममय हैं। वे प्रेमसे ही प्रकट होते हैं; क्योंकि वे स्वयं प्रेममय हैं।

यदि कहो कि बात तो सही है, पर हमलोगोंमें प्रेम नहीं है। तो यह तो आपकी ही मान्यता है न? ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ प्रेम न हो। प्रेमियोंका प्रेम और ज्ञानियोंका आनन्द सब जगह है। वेदान्तमें अस्ति, भाति, प्रिय कहा है। समझना चाहिये—प्रिय क्या वस्तु है। प्रिय और प्रेममें कोई अन्तर नहीं है। संसारमें कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है, जिसमें आनन्द व्याप्त न हो। प्रेम उसका स्वरूप है। वह सब जगह है।

भगवान्ने वाल्मीकिमुनिसे रहनेका स्थान पूछा। उन्होंने कहा—'भगवन्! बतलाइये, आप कहाँ नहीं हैं?' वह प्रेममय परमात्मा बाहर-भीतर सब जगह परिपूर्ण है।

हमें भगवान् नहीं मिलते—यह हमारी मान्यता नीतिके अनुसार ठीक है। ऐसा मानकर हम भगवान्‌का भजन करें, सत्संग करें तो आगे जाकर हमारा कल्याण हो सकता है। नीति तो यही है, किंतु इसीसे विलम्ब हो रहा है। एक बात इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। हम कानून माननेवाले हैं, इसलिये भगवान्‌ने यह कानून बना दिया। पर हम यह मान लें कि कानूनकी बात तो वही है—अपनी दृष्टिसे तो वही बात है, पर प्रभु असम्भवको भी सम्भव करनेवाले हैं—वे अपने दासोंके दोषोंकी ओर देखते ही नहीं। वे बिना ही कारण दासोंपर दया और प्रेम करते हैं। उनका स्वभाव ही ऐसा है। उनके स्वभावपर हम दृढ़ विश्वास कर लें, तो फिर हम इस बातकी प्रतीक्षा करें कि एक क्षणका भी विलम्ब क्यों हो रहा है? हम इस बातपर अड़ जायँ कि एक क्षणका भी विलम्ब क्यों होना चाहिये? बस, फिर विलम्ब हो नहीं सकता।

हमारा प्रेम, हमारी करनी तो विलम्ब ही करनेवाले हैं, किंतु इस अपनी मान्यताको छोड़कर प्रभुकी ओर खयाल करें तो फिर विलम्ब नहीं होना चाहिये। हमारी धारणा बलवती होनी चाहिये। ''प्रभो! आप तो परम दयालु हैं, आप तो दासोंके दोषोंको देखते ही नहीं। आपकी दया तो प्रत्यक्ष है। आप परम प्रेमी हैं—आपका प्रेम तो बिना हेतु ही होता है। प्रभो! मैं जब ऐसा मानता था कि 'प्रभु न्यायकारी हैं, जब हम भजन करेंगे तो वे दर्शन देंगे' उस समयतक तो विलम्ब होना ठीक ही था, किंतु प्रभो! अब तो मैं मानता हूँ कि आप परम दयालु हैं, आपका दया करना ही एकमात्र स्वभाव है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि आप अब एक क्षण भी विलम्ब नहीं करेंगे।'' ऐसा दृढ़ विश्वास रखें तो फिर उस कानूनसे जो विलम्ब हो रहा है, वह नहीं हो।

यह एक असम्भव-सी बात लगती है कि एक क्षणमें हमारा कल्याण हो जायगा। लोगोंकी यह धारणा हो रही है कि भगवान् न्यायकारी हैं—जब हम पात्र होंगे, तब भगवान् दर्शन देंगे। यह बात युक्तिसंगत होते हुए भी भगवान्‌पर लागू नहीं हो सकती। भगवान्‌के लिये कुछ भी असम्भव नहीं है असम्भव बात भी सम्भव हो सकती है—प्रभु ऐसे ही प्रभावशाली हैं। प्रभुका प्रभाव ही ऐसा है। वहाँ सार असम्भव भी सम्भव है। यह बात हम समझ लें तो उसी समय कल्याण हो जाय। दया, प्रेम प्रभुके गुण हैं। असम्भवको भी सम्भव कर देना यह प्रभाव है प्रभुके गुणोंमें या प्रभावमें—किसी एकमें भी विश्वास हो जाय तो फिर बस, आप कैसे भी हों, आपको एक-एक मिनट प्रभुका विलम्ब सहन नहीं हो सकेगा आप प्रतिक्षण व्याकुल हो प्रतीक्षा करेंगे और प्रभु उसी क्षण प्रकट हो जायँगे। बस, केवल उसकी दयापर निर्भर होना चाहिये। फिर हम-सरीखोंकी तो बात क्या, हमसे भी गये-बीते लोगोंको एक क्षणमें दर्शन हो सकते हैं। हमें दर्शन होनेमें विलम्ब इसीलिये हो रहा है कि हम विश्वास नहीं करते हैं।

प्रेरक-प्रसंग—

असत्‌की कमाई नष्ट हो जाती है

श्रीसेठजी (श्रीजयदयाल गोयन्दकाजी)-के पिताजी श्रीखूबचन्दजी गोयन्दकाको पराये धनसे बड़ी घृणा थी। एक बार उनके घरमें कोई कुत्ता आकर घी खा गया। उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि हमारी चीज कुत्ता कैसे खा गया? सत्यकी कमाई ऐसे जा नहीं सकती—यह उनका दृढ़ विश्वास था। उन्होंने कहा 'अवश्य कहीं-न-कहीं हमारे घरमें पराया हक आया है, अन्यथा कुत्ता मेरा घी नहीं खा सकता।' हिसाब देखा गया। भूलसे छः आनेके मूँग तौलनेवालेने ज्यादा ले लिये थे। इतने ही मूल्यका घी कुत्ता खा गया। सत्यकी कमाईपर उनकी इतनी दृढता थी। उन्होंने भविष्यके लिये सभी कर्मचारियोंको सावधान कर दिया।

दर्शनीय आश्चर्य

(साधुवेशमें एक पथिक)

यह आश्चर्यकी बात है कि जहाँ अनन्त आनन्दकी लहरें उठ रही हैं, जहाँ असीम शान्ति बरस रही है, वहाँ अज्ञानवश मनुष्य नाममात्रके दुःखोंसे भयभीत होकर नहीं जाते और जहाँ अनन्त दुखोंकी लहरें उठ रही हैं, जहाँ घोर अशान्तिका कुहरा छाया हुआ है, जहाँ रागके गहन गर्त एवं द्वेषकी दुर्गम दीवारें सत्य लक्ष्यको छिपाये हुए हैं, वहाँ नाम-मात्रके सुख-लोभवश अन्धकारमें भटकते हुए प्राणी इस दुर्लभ जीवनका दुरुपयोग कर रहे हैं।

यह भी आश्चर्यकी बात है कि जो परमानन्द स्वरूप, सर्वशक्तिमान् अपने निकट-से-निकट और परम प्रेमास्पद तथा परमात्मदेव हैं, उन परम प्रेममय प्रभुकी शरणापन्न न होकर अज्ञानी मनुष्य संसारके पदार्थोंका आश्रय ले रहे हैं, प्रकृतिकी उन शक्तियोंके सेवक बन रहे हैं, जो क्षणभंगुर, नितान्त निस्सार तथा भयप्रद हैं।

यह भी आश्चर्यकी बात है कि भौतिक जगत्‌की जिस भूमिको, जिस सम्पत्तिको तथा संसारमें उत्पन्न होनेवाले शरीर आदि पदार्थोंको अपना मानकर अभिमान करनेवाले असंख्य मनुष्य अन्तमें उन सबको छोड़कर खाली हाथ ही चले गये, उसी भूमिको, उसी सम्पत्तिको और उन्हीं देहादिक पदार्थोंको अपना मानकर अज्ञानी मनुष्य उनमें रागासक्त हो रहे हैं। यह देखते हुए भी कि संसारकी कोई भी वस्तु किसीके साथ नहीं जाती, फिर भी मोहके वशीभूत होकर मनुष्य उन्हीं वस्तुओंको 'मेरी-मेरी' कहते हुए मर रहे हैं। जहाँ अपना सदाका संगी शरीर भी साथ नहीं देता, वहाँ दूसरे सम्बन्धियोंके शरीरोंको अपना मानकर उनके सम्बन्ध-विच्छेदमें विकल हो रहे हैं, किंतु अपने समस्त दुःखोंका कारण जो अज्ञानजनित मोह है, उसका त्याग करके विरक्त नहीं होते।

एक आश्चर्यकी बात और भी देखिये, जो वस्तु किसीको देनेसे उसके साथ जाती नहीं है और किसीसे लेनेपर अपने साथ आती नहीं है, उसे अज्ञानवश परस्पर देने और लेनेवाले मानकर अज्ञानी मनुष्य अपने मनमें ऐसा मानते रहते हैं।

यह और भी आश्चर्यकी बात है कि जहाँ मनुष्य अपने ही समान अनेकों प्राणियोंका अचानक किसी-न-किसी निमित्तसे देहावसान होते देखते हैं, वहाँ अपनी देहकी अचानक, न जाने कब हो जानेवाली मृत्युके लिये सावधान नहीं रहते, बल्कि इसके विरुद्ध ऐसे भावोंको लेकर दैनिक व्यवहारोंमें स्वार्थपरता ही चरितार्थ करते हैं, मानो कोई अविनाशी देह धारण करके आये हों। यह भी आश्चर्यकी बात है कि अज्ञानवश मनुष्य विविध विषयोंमें प्राप्त होनेवाले सुखकी तृष्णाको नाना प्रकारके भोगोंके द्वारा तृप्त करना चाहते हैं, यह तृष्णा तो कभी किसीकी तृप्त नहीं होती, बल्कि तृप्त करनेवाले जीवनको ही यह राक्षसी खा लेती है, फिर भी मनुष्य इसे तृप्त करनेमें ही जीवनका अपव्यय कर रहे हैं।

इस सुखकी तृष्णाकी तृप्ति चाहनेवाले मनुष्योंके खाते-खाते दाँत घिस गये, देखते-देखते आँखें दृष्टिहीन हो गयीं, सुनते-सुनते कान बहरे बन गये, अन्तमें विषयोंको भोगते-भोगते शक्तिहीन और जराजीर्ण हो गये, फिर भी तृष्णा जीर्ण न हुई।

यह भी आश्चर्यकी बात है कि सब कुछ देखने, सुनने, समझनेका दम भरते हुए मानव उसे ही नहीं जानते, जिसके जाननेसे परम सन्तोष प्राप्त होता है; उसे ही नहीं देखते, जिसके देखनेसे परमानन्दका अनुभव होता है, उसके ही विषयमें नहीं सुनते, जिसके विषयमें सुननेसे परम तृप्ति होती है; उसकी ओर नहीं चलते जिसकी ओर चलनेसे परमधामकी प्राप्ति होती है।

नारायण सुख भोगमें, मस्त सभी संसार।

कौन मस्त वा मौजमें, देखत आँख पसार॥

भगवान्‌का स्मरण कैसे करें ?

(नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

१-ऐसे करो, जैसे अफीमची अफीम न मिलनेपर अफीमका स्मरण करता है।

२-ऐसे करो, जैसे मुकद्दमेबाज मुकद्दमेका स्मरण करता है।

३-ऐसे करो, जैसे जुआरी जुएका स्मरण करता है।

४-ऐसे करो, जैसे लोभी धनका स्मरण करता है।

५-ऐसे करो, जैसे कामी कामिनीका स्मरण करता है।

६-ऐसे करो, जैसे शिकारी शिकारका स्मरण करता है।

७-ऐसे करो, जैसे निशानेबाज निशानेका स्मरण करता है।

८-ऐसे करो, जैसे किसान पके खेतका स्मरण करता है।

९-ऐसे करो, जैसे प्याससे व्याकुल मनुष्य जलका स्मरण करता है।

१०-ऐसे करो, जैसे भूखका सताया हुआ मनुष्य भोजनका स्मरण करता है।

११-ऐसे करो, जैसे घर भूला हुआ मनुष्य घरका स्मरण करता है।

१२-ऐसे करो, जैसे बहुत थका हुआ मनुष्य विश्रामका स्मरण करता है।

१३-ऐसे करो, जैसे भयसे कातर मनुष्य शरण देनेवालेका स्मरण करता है।

१४-ऐसे करो, जैसे डूबता हुआ मनुष्य जीवनरक्षाका स्मरण करता है।

१५-ऐसे करो, जैसे दम घुटनेपर मनुष्य वायुका स्मरण करता है।

१६-ऐसे करो, जैसे परीक्षार्थी परीक्षाके विषयका स्मरण करता है।

१७-ऐसे करो, जैसे ताजे पुत्रवियोगसे पीड़िता माता पुत्रका स्मरण करती है।

१८-ऐसे करो, जैसे नवीन विधवा अबला अपने मृत पतिका स्मरण करती है।

१९-ऐसे करो, जैसे घरमें रहनेवाली कुलटा स्त्री अपने जारका स्मरण करती है।

२०-ऐसे करो, जैसे मातृपरायण शिशु माताका स्मरण करता है।

२१-ऐसे करो, जैसे प्रेमी अपने प्रियतम प्रेमास्पदका स्मरण करता है।

२२-ऐसे करो, जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पतिका स्मरण करती है।

२३-ऐसे करो, जैसे अन्धकारसे अकुलाये हुए प्राणी प्रकाशका स्मरण करते हैं।

२४-ऐसे करो, जैसे सर्दीसे काँपते हुए मनुष्य अग्निका स्मरण करते हैं।

२५-ऐसे करो, जैसे चकवा-चकवी सूर्यका स्मरण करते हैं।

२६-ऐसे करो, जैसे चातक मेघका स्मरण करता है।

२७-ऐसे करो, जैसे जलसे बिछुड़ी हुई मछली जलका स्मरण करती है।

२८-ऐसे करो, जैसे चकोर चन्द्रमाका स्मरण करता है।

२९-ऐसे करो, जैसे फलकामी पुरुष फलका स्मरण करता है।

३०-ऐसे करो, जैसे मुमुक्षु पुरुष आत्माका स्मरण करता है।

३१-ऐसे करो, जैसे शुद्धहृदय मुमूर्षु पुरुष भगवान्‌का स्मरण करता है।

३२-ऐसे करो, जैसे योगी पुरुष चेतन ज्योतिका स्मरण करते हैं।

३३-ऐसे करो, जैसे ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मका स्मरण करता है।

श्रीराम-तत्त्व

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

उदारता, स्वाधीनता अथवा प्रेम ही जीवन-तत्त्व है। यही वास्तविक मानवता है। उसका मूलस्रोत अनादि, अनन्त श्रीराम-तत्त्व है। इस तथ्यमें अविचल आस्था अनिवार्य है। अनुत्पन्न होनेसे श्रीराम-तत्त्व सदैव सर्वत्र विद्यमान है, अर्थात् अभी है, अपनेमें है और अपना है। अपना होनेसे प्रिय है। प्रियता एक ऐसा अनुपम, अलौकिक, अद्भुत तत्त्व है कि उसका प्राकट्य होनेपर श्रीराम-तत्त्वसे दूरी, भेद और भिन्नता शेष नहीं रहती, अर्थात् मानवको स्वत: योग-बोधक प्रेमकी प्राप्ति होती है। भोग-मोह-आसक्तिकी निवृत्ति तथा योग-बोध-प्रेमकी प्राप्ति मानवमात्रकी अपनी माँग है। माँग उसे नहीं कहते, जो अपनी पूर्तिमें आप समर्थ न हो; कारण, माँग उसीकी होती है, जो अपना जीवन है। जाने हुए असत्‌के संगसे काम अर्थात् दृश्यका आकर्षण उत्पन्न होता है, जिसके होते ही माँग दब जाती है और अनेक कामनाओंका जन्म हो जाता है। कामनाओंकी उत्पत्ति-पूर्ति-अपूर्तिके कारण मानव पराधीनता, जड़ता एवं अभावमें आबद्ध हो जाता है; किंतु फिर भी स्वाभाविक माँगका नाश नहीं होता। सत्संगके द्वारा माँग सबल तथा स्थायी हो जाती है। इतना ही नहीं, ज्यों-ज्यों माँग होती है, त्यों-त्यों कामका नाश स्वत: होता जाता है। यह अनन्तका मंगलमय विधान है। सर्वांशमें कामका नाश होते ही माँग स्वत: पूरी हो जाती है और फिर प्रियता और प्रेमास्पदका अविनाशी, चिन्मय, रसरूप विहार ही शेष रहता है। यह शरणागत साधकोंका अनुभव-सिद्ध सत्य है।

मानव जन्मजात साधक है। साधन-तत्त्व उसका जीवन है। असत्‌के संगसे असाधन उत्पन्न होता है। यह साधकका अपना प्रमाद है, जिसकी निवृत्ति एकमात्र सत्संगसे ही साध्य है। प्रमाद कोई प्राकृतिक पदार्थ नहीं है, अपितु वह मानवकी भूलसे ही उत्पन्न होता है। जो भूलजनित है, उसकी निवृत्ति भूलरहित होनेसे ही होती है। भूलका ज्ञान जिस ज्ञानसे होता है, वह ज्ञान अनन्तका प्रकाश है, जो श्रीराम-कृपासे मानवको नित्य प्राप्त है। प्राप्त ज्ञानका आदर तथा प्राप्त बलका सदुपयोग एवं श्रीराम-तत्त्वमें विकल्परहित आस्था सत्संग है, जो मानवका अपना स्वधर्म है। स्वधर्मनिष्ठ होते ही असाधनका नाश, साधनकी अभिव्यक्ति तथा साधन और जीवनमें एकता हो जाती है, जिसके होते ही साधकका अस्तित्व साधन-तत्त्वसे भिन्न कुछ नहीं रहता। समस्त साधन साधन-तत्त्वमें विलीन हो जाते हैं। जबतक साधन और असाधनका द्वन्द्व रहता है, तबतक साधक और साधन-तत्त्वमें भिन्नता रहती है। सर्वांशमें असाधनका नाश होते ही साधकका अस्तित्व साधनसे भिन्न कुछ नहीं रहता, अर्थात् अखण्ड स्मृति, अगाध प्रियता एवं नित्य जागृति ही शेष रहती है, जो वास्तविक जीवन है।

यह सर्वमान्य सत्य है कि दृश्यका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है, अपितु उसके उत्पत्ति-विनाशका क्रम है। जिसकी स्थिति नहीं है, उसके अस्तित्वमें आस्था रखना भूल है। इस दृष्टिसे अनुत्पन्न हुए तत्त्वमें ही आस्था-श्रद्धा-विश्वास करना चाहिये। उत्पत्तिका आधार, प्रतीतिका प्रकाशक, अनादि, अनन्त श्रीराम-तत्त्व ही है। आस्था-श्रद्धा-विश्वासपूर्वक श्रीराम-तत्त्वसे आत्मीय सम्बन्ध स्वीकार करना तथा ज्ञानपूर्वक दृश्यसे असंग होना एवं निर्मम, निष्काम होकर प्राप्त बलका सदुपयोग करना जीवनका सत्य है। सत्यको स्वीकार करनेसे ही मानवका सर्वतोमुखी विकास होता है। आत्मीयतासे ही अखण्ड स्मृति तथा अगाध प्रियता उदित होती है, जिसके साथ ही साधक साधन-तत्त्वसे अभिन्न हो जाता है अर्थात् मानवका अस्तित्व अगाध प्रियतासे भिन्न कुछ नहीं रहता। स्वप्रियताका ही विवेकात्मक रूप स्वाधीनता एवं क्रियात्मक रूप उदारता है। उदारतासे जीवन जगत्‌के लिये और स्वाधीनतासे अपने लिये एवं प्रियतासे प्रभुके लिये उपयोगी होता है। उदारता, स्वाधीनता और प्रेम श्रीराम-तत्त्वकी ही महिमा एवं मानवके विकासकी चरम सीमा है। महामहिम श्रीराम-तत्त्वके अस्तित्व और महत्त्वको स्वीकार करना प्रत्येक सजग मानवके लिये अनिवार्य है। स्वीकृति कोई अभ्यास नहीं है, अपितु अविचल विश्वास है। विश्वाससे सम्बन्ध सजीव होता है और सम्बन्धसे स्मृति तथा प्रियता उदय होती है। श्रीराम-तत्त्व साध्य-तत्त्व है। मानव साधक है। साध्यकी अगाध प्रियता ही साधकका स्वरूप है। इस दृष्टिसे साधक और साध्य अर्थात् प्रेमी और प्रेमास्पदका नित्य विहार ही [illegible] है।

साधकोंके प्रति—

विचार करें

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

विचार करें, परमात्मा अपने हैं कि संसार अपना है ? हमें संसार प्यारा लगता है कि भगवान् प्यारे लगते हैं ? सदा हमारे साथ भगवान् रहेंगे कि संसार रहेगा ? हम परमात्माके अंश हैं—'**ममैवांशो जीवलोके**' (गीता १५ । ७) । फिर हमें परमात्मा प्यारे न लगें, संसार प्यारा लगे—यह क्या उचित बात है ? संसार तो हरदम हमसे दूर होता है, क्षणभर भी हमारे साथ नहीं रहता और परमात्मा सदा हमारे साथ रहते हैं, क्षणभर भी दूर नहीं होते । परंतु हमारी दृष्टि परमात्माकी तरफ नहीं है, प्रत्युत संसारकी तरफ है । हम भगवान्‌के अंश हैं तो हमें भगवान् प्यारे लगने चाहिये, परंतु हमें परमपिता परमेश्वर इतने प्यारे नहीं लगते, जितना संसार प्यारा लगता है । संसार साथ रहता नहीं और साथ रहेगा नहीं, रह सकता नहीं । यह एक क्षण भी साथ नहीं रहता, हरदम हमसे दूर हो रहा है । रुपये-पैसे, मकान, स्त्री, पुत्र, परिवार आदि कोई भी साथ रहने-वाला नहीं है और भगवान्‌का साथ छूटनेवाला नहीं है ।

शरीर-संसारका सम्बन्ध हरदम छूट रहा है । हमारी उम्रमेंसे जितने वर्ष बीत गये, उतना तो संसार छूट ही गया—यह प्रत्यक्ष बात है, एकदम सच्ची तथा पक्की बात है । जिस क्षण जन्म हुआ, उसी क्षणसे शरीर-संसार हमसे दूर जा रहे हैं । संसारकी प्रत्येक वस्तु प्रतिक्षण बदल रही है, परंतु अनन्त युग भले ही बीत जायँ, भगवान् नहीं बदलेंगे । वे कभी हमसे दूर नहीं होंगे, सदा साथ रहेंगे । हम सदा भगवान्‌के साथ हैं और भगवान् सदा हमारे साथ हैं । जो शरीर एक क्षण भी हमारे साथ नहीं रहता, वह शरीर हमें प्यारा लगता है और लोगोंकी दृष्टिमें हम भगवान्‌की तरफ चलनेवाले सत्संगी कहलाते हैं ! विचार करें कि वास्तवमें हम सत्संगी हुए कि कुसंगी हुए ? हम सत्‌का संग करते हैं कि असत्‌का संग करते हैं ? हमें सत् प्यारा लगता है कि असत् प्यारा लगता है ? कम-से-कम इतनी बातकी तो होश होनी चाहिये कि संसार हमारा नहीं है ।

अमल सहज सुखरासी ।' परंतु संसारका संग करनेसे मल-ही-मल लगता है, दोष-ही-दोष लगता है, पाप-ही-पाप लगता है । संसारके संगसे लाभ कोई नहीं होता और नुकसान कोई बाकी नहीं रहता । हम शरीरमें कितनी ममता रखते हैं, उसको अन्न-जल देते हैं, कपड़ा देते हैं, आराम देते हैं, उसकी सँभाल रखते हैं, पर शरीर हमारा बिलकुल कायदा नहीं रखता । रातको भूलसे भी शरीरसे कपड़ा उतर जाय तो शीत लग जाता है, बुखार आ जाता है ! रोटी देनेमें एक दिन देरी हो जाय तो शरीर कमजोर हो जाता है ! हम तो रात-दिन शरीरके पीछे पड़े हैं, पर यह हमारी परवाह नहीं करता, हमारी भूलको भी माफ नहीं करता । फिर भी शरीर हमें प्यारा लगता है और सदा हमारा हित चाहनेवाले भगवान् और उनके भक्त प्यारे नहीं लगते !

प्रत्येक व्यक्तिको विचार करना चाहिये कि हमें कौन अच्छा लगता है ? जो भगवान्‌में, उनके भजन-स्मरणमें लगाता है, वह अच्छा लगता है कि जो संसारमें लगाता है, वह अच्छा लगता है ? जो वस्तु सदा साथ नहीं रहती, वह अच्छी लगती है कि जो सदा साथ रहती है, वह अच्छी लगती है ? शरीर-संसार हमारे साथ नहीं रहते और हम उनके साथ नहीं रहते, परंतु धर्म हमारे साथ रहता है, ईश्वर हमारे साथ रहता है, न्याय हमारे साथ रहता है, सच्चाई हमारे साथ रहती है । विचार करें कि हम सच बोलते हैं कि झूठ बोलते हैं ? हमें न्याय अच्छा लगता है कि अन्याय अच्छा लगता है ? ईमानदारी अच्छी लगती है कि बेईमानी अच्छी लगती है ? हमें अन्याय अच्छा लगता है तो उसका फल क्या होगा ? भोग अच्छे लगते हैं तो उसका फल क्या होगा ? भोग भोगनेसे हमें लाभ हुआ है कि नुकसान हुआ है ? अपने जीवनको सँभालें और सोचें कि हम क्या कर रहे हैं ? किधर जा रहे हैं ? हमें क्या अच्छा लगता है ? भगवान्‌का भजन अच्छा लगता है कि संसार (भोग और संग्रह) अच्छा लगता है ? संसार क्या फायदा करता है

करता है और धर्म क्या नुकसान करता है? विचार करें, देखें, सोचें—

संसार साथी सब स्वार्थ के हैं, पक्के विरोधी परमार्थ के हैं।
देगा न कोई दुःख में सहारा, सुन तू किसी की मत बात प्यारा॥

भजन-स्मरण करें तो घरवाले राजी नहीं होंगे। पर झूठ, कपट, बेईमानी करें तो घरवाले राजी हो जायँगे। विचार करो कि वे आपके फायदेमें राजी होते हैं कि आपके नुकसानमें राजी होते हैं? इस तरफ ध्यान दो कि आपका भला चाहनेवाले और भला करनेवाले कौन-कौन हैं? भगवान्‌ने हमें शरीर दिया है, पदार्थ दिये हैं, पर सब कुछ देकर भी वे हमारेपर एहसान नहीं करते, परंतु संसार थोड़ा-सा काम करता है तो कितना एहसान करता है? वह तो अच्छा लगता है, पर भगवान् अच्छे नहीं लगते! भगवान्‌ने शरीर दिया, आँखें दीं, हाथ दिये, पाँव दिये, बुद्धि दी, विवेक दिया, सब कुछ दिया, उनसे सुख पाते हैं और भगवान्‌को याद ही नहीं करते! भगवान्‌से मिली हुई चीज तो अच्छी लगती है, पर भगवान् अच्छे नहीं लगते। क्या यह उचित है? स्वयं विचार करें। महाभारतमें आया है—'**यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसार-बन्धनात्। विमुच्यते....॥**' 'जिनको याद करनेमात्रसे संसारका जन्म-मरणरूप बन्धन छूट जाता है।' भगवान्‌को याद करनेसे ही संसारके दुःख छूट जाते हैं! कुछ मत करो, कोई चीज मत दो, केवल याद करो तो भगवान् राजी हो जाते हैं—'**अच्युतः स्मृतिमात्रेण**' संसारमें ऐसा कोई है, जो केवल याद करनेसे राजी हो जाय? आप दिनभर काम करके शामको घर जाओ और स्त्रीसे पूछो कि रसोई बनायी? वह कहे कि नहीं, मैं तो आपको याद कर रही थी तो क्या आप राजी हो जाओगे? रोटी तो बनायी ही नहीं, याद करनेसे क्या होगा? परंतु भगवान्‌की याद करनेसे ही वे राजी हो जायँगे। क्या इतना सस्ता कोई है? इतना हितैषी कोई है? उसको तो भूल जाते हैं और संसारको याद रखते हैं! क्या यह उचित है? भगवान्‌का स्मरण करके कितने बड़े-बड़े सन्त-महात्मा हो गये! आज उनका सब आदर संसारको याद न करके भगवान्‌को याद किया।

विचार करें, हम सन्त-महात्माओंका कहना मानते हैं कि संसारमें रचे-पचे लोगोंका कहना मानते हैं? जो सदा हमारा हित चाहते हैं और हित करते हैं, जिन्होंने हमारा कभी अहित नहीं किया, कभी धोखा नहीं दिया—वे तो हमें अच्छे नहीं लगते और धोखा देनेवाले, ठगाई करनेवाले आदमी अच्छे लगते हैं, फिर हमारा भला कैसे होगा? उद्धार कैसे होगा? हरदम भगवान्‌को याद करो और 'हे नाथ! हे नाथ!!' पुकारते रहो तो आपकी विलक्षण स्थिति हो जायगी। लोग आपको महात्मा कहेंगे। सच्चाईसे, ईमानदारीसे काम करो तो लोग अच्छा कहेंगे। पहले भले ही बुरा कह दें, पर अन्तमें सब अच्छा-ही-अच्छा कहेंगे।

भगवान् सदा हित करनेवाले हैं। उनके द्वारा कभी किसीका अहित नहीं होता, सदा हित-ही-हित होता है। हम उनकी परवाह नहीं करते, उनको याद नहीं करते, इतनेपर भी वे हमारा हित करना छोड़ते नहीं। वे भगवान् हमें मीठे लगने चाहिये। उनकी मीठी-मीठी याद आनी चाहिये। उनको याद करके हम पवित्र हो जायँगे, सन्त हो जायँगे! जिनको हम याद करते हैं, वे स्त्री, पुत्र, परिवार हमें क्या निहाल करेंगे? मीराबाईने भगवान्‌को अपना मान लिया तो अच्छे-अच्छे सन्त मीराबाईका आदर करते हैं, उनके पद गाते हैं। वास्तवमें भगवान् और उनके भक्त—ये दो ही बिना स्वार्थ सबका हित करनेवाले हैं—

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी।
स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं।

(रा०च०मा० ७। ४७। ५-६)

सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती।

(रा०च०मा० ४। १२। २)

सब लोग अपने मतलबसे प्रेम करते हैं। बिना मतलब प्रेम करनेवाले भगवान् और उनके भक्त ही हैं। अगर वे हमें अच्छे लगने लग जायँ, तो हम सन्त बन जायँगे, ऊँचे बन जायँगे। परंतु झूठ, कपट, बेईमानी, ठगी, धोखेबाजी अच्छी लगेगी, तो नीचे बन जायँगे

कर रहे हैं और भगवान्‌के नजदीक कितने गये हैं? विचार करें। रुपये कितने प्यारे लगते हैं, पर चट हाथसे निकल जाते हैं। फिर भी हाय रुपया, हाय रुपया करते हो। रुपया आपको याद नहीं करता। पर भगवान् आपको याद करते हैं, आपकी रक्षा करते हैं, सहायता करते हैं। भगवान्‌के समान दूसरा कौन है?

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥

(रा०च०मा० ४। १२। १)

भगवान्‌ने हमारा कितना उपकार किया है, कितना उपकार करते हैं और कितना उपकार करेंगे! भगवान्‌के समान हित करनेवाला कोई है ही नहीं, हुआ ही नहीं, होगा ही नहीं, हो सकता ही नहीं। हम भगवान्‌के लिये क्या करते हैं? भगवान्‌को हमारेसे क्या स्वार्थ है? फिर भी वे हमसे प्रेम रखते हैं, हमारा हित करते हैं। अगर हम सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जायँ तो निहाल हो जायँगे।

नाम नाम बिनु ना रहे, सुनो सयाने लोय।
मीरा सुत जायो नहीं, शिष्य न मुंड्यो कोय॥

हम सोचते हैं कि हमारा बेटा हो जाय तो हम निहाल हो जायँगे, हमारा चेला बन जाय तो हम निहाल हो जायँगे। परंतु मीराबाईका न कोई बेटा हुआ, न उन्होंने कोई चेला बनाया, पर आज कई पीढ़ी बीतनेपर भी लोग उनका नाम लेते हैं, उनको याद करते हैं आपको तीन-चार पीढ़ीके नाम भी याद नहीं होंगे मीराबाईमें एक ही विशेषता थी—***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।'*** एक भगवान्‌को याद करनेसे सब काम ठीक हो जाता है। लोक-परलोक दोनों सुधर जाते हैं। परंतु भोगोंको याद करनेसे शरीर भी खराब होता है, मन भी खराब होता है, आदत भी खराब होती है, स्वास्थ्य भी खराब होता है। इसलिये हरदम भगवान्‌को याद रखो। यही सबका सार है।

अभिलाषा

(श्रीबृजमोहनजी बेरीवाला)

मैं बन जाऊँ पायल तेरी, रुनझुन रुनझुन बोलूँ।
पीछे-पीछे डोलें बिहारी, कानन अमृत रस घोलूँ॥
मैं बन जाऊँ पनही तेरी, कृष्ण नैन ललचावैं।
चुपके से वो लेके मुझको, हृदय माँझ पधरावैं॥
मैं बन जाऊँ मेंहदी रचीली, पिय लै हस्त लगावैं।
रच जाऊँ जब हस्तकमल पै, निरखि-निरखि सुख पावैं॥
मैं बन जाऊँ कंदुक तेरी, पिय के संग तू खेलै।
गिरन न देवै कोई मुझको, हार क्यूँ अपनी झेलैं॥
मैं बन जाऊँ पुष्प सुकोमल, प्रियतम लै गजरा गूथैं।
बाँध के वेणी तेरे केश पे, भँवर सदृश रस लूटैं॥
मैं बन जाऊँ सुमन हिंडोला, प्यारी प्रियतम मिल झूलें।
बतियावें वो मीठे-मीठे, प्रेम गगन को छू लें॥
मैं बन जाऊँ सेज सुहावन, प्यारी प्रियतम मिल बिहरो।
मान करो तुम प्रेम बढ़ावन, वे चिबुक हाथ लैं तिहरो॥
मैं बन जाऊँ कोकिल तेरी, मीठे बोल रिझाऊँ।
प्रियतम ढिंग राधे-राधे, तेरे ढिंग मोहन गाऊँ॥

[प्रेषक—श्रीगौरांगजी अग्रवाल]

गीताका भक्तियोग और मीराकी प्रेम-साधना

(आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)

गीताके बारहवें अध्यायमें भगवान् श्रीकृष्ण अपने सखा अर्जुनको भक्तियोगके माध्यमसे भक्तोंके लक्षण बतलाते हैं कि एक आदर्श भक्तका चरित्र कैसा होना चाहिये? भक्तियोगमें वर्णित गुणोंसे युक्त व्यक्ति ही भक्तकी श्रेणीमें माना जाता है तथा वह परमात्माकी प्राप्तिका अधिकारी होता है। कलियुगमें ऐसा ही एक विलक्षण व्यक्तित्व मीराके रूपमें अवतरित हुआ, जो परमात्माके प्रति अपनी अनन्य भक्ति एवं शरणागतिसे न केवल परमात्माके प्रत्यक्ष दर्शन ही करती रही, अपितु अपने अन्तिम समयमें सशरीर परमात्मासे एकाकार हो गयी। उनमें गीताके भक्तियोगमें निर्दिष्ट भक्तके सभी गुणोंकी अभिव्यक्ति देखी जा सकती है, जो पारमार्थिक साधकके लिये अनुकरणीय है तथा अपने साध्यकी प्राप्तिके लिये प्रेरणाका स्रोत है।

१-सब प्राणियोंमें द्वेष भावसे रहित, मित्र भाववाला, दयालु तथा क्षमाशील (अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च)—भगवद्भक्तका किसी भी प्राणीसे द्वेष नहीं होता है, वह सबको 'सीयराममय' मानकर सबसे प्रेम करता है, सभीके प्रति उसका आत्मस्वरूप व्यवहार होता है, वह उदार हृदयवाला होता है तथा क्षमाकी प्रतिमूर्ति होता है। मीराके देवर महाराणा विक्रमादित्यने उन्हें अनेक प्रकारसे सताया—विषका प्याला भिजवाया; साँपोंकी टोकरी भिजवायी, नरभक्षी शेरको उनके महलमें छोड़ा, भूत-महलमें अकेले मीराको बन्द कर दिया, स्वयं तलवार लेकर रात्रिमें मीराको मारने उनके शयन-कक्षमें गये; तथापि मीराका व्यवहार उनके प्रति द्वेष-भावसे रहित रहा। जब मीराने अपनी ससुराल चित्तौड़का सदाके लिये परित्याग कर दिया और महाराणा विक्रमादित्य उनको विदा करने नगरके बाहरतक आये तो मीराने हँसकर हाथ जोड़े—'सदाके लिये विदा कीजिये अपनी इस खोटी भौजाईको। अब यह आपको कष्ट देने पुनः हाजिर नहीं होगी। मुझसे जान-अनजानमें महाराणाने अपने अपराधोंके लिये क्षमा माँगी तो मीराने विनम्रतासे उत्तर दिया 'मेरे मनमें कभी आपके कार्य अथवा आपकी बातें अपराध-जैसी लगीं ही नहीं, फिर माफी कैसी देवरजी!' ऐसी महानता प्रह्लाद-जैसे किसी महान् भक्तमें ही हो सकती है, जो अपने अत्याचारी पिताके प्रति सदैव निर्वैर रहा।

मीराका व्यवहार अपने दास-दासियोंके प्रति भी मित्रवत् ही रहा। वे उनकी दैनिक चर्याका सदैव ध्यान रखती थीं तथा उन्हें कोई कष्ट नहीं होने देती थीं। मीरा जब अपने पीहर मेड़तासे चित्तौड़ लौट रही थीं तो रास्तेमें उन्हें एक गाँवके पाससे निकलते समय स्त्री-बच्चोंके रोने-चिल्लानेका स्वर सुनायी दिया। पता लगा कि राणाके अधिकारी गाँववालोंसे जबरन कर वसूली कर रहे हैं और उनके अकाल आदिके कारण इस वर्षके लिये कर चुकानेकी असमर्थता प्रकट करनेपर भी तथा अगले वर्ष एक साथ कर चुकानेका अनुरोध करनेपर भी उनकी बहू-बेटियोंको घरोंसे खींचकर बाहर निकाल रहे हैं। मीराने उनका कड़ा विरोध किया और न माननेपर अपनी दासियोंके गहने देकर करका भुगतान किया। इस प्रकार उनमें दयालुता तथा क्षमाशीलता कूट-कूटकर भरी थी।

२-ममता और अहंकाररहित (निर्ममो निरहंकारः)—भक्त ममतारहित और अहंकाररहित होता है। उसकी ममता तो एक उसके अपने आराध्यके प्रति ही होती है और सारे संसारके प्रति समताका व्यवहार होता है। मीराका सबके प्रति अहंकाररहित प्रेमपूर्ण व्यवहार था, और वे यथासम्भव अपने गिरधरलालकी सेवासे निवृत्त होनेपर सबकी सेवा करती थीं, किंतु उनकी ममता अपने प्रभुमें ही थी। अपने प्रभुके अतिरिक्त उन्हें कोई प्यार नहीं था। उनके मनोभाव थे—

बसो मेरे नैनन में नंदलाल।
मोहिनी मूरत साँवरी सूरत, नैना बने विशाल।

राजामाता जोधाजी (धनाबाई) जब कहती हैं कि 'और सभी कहीं-न-कहीं इकट्ठे होते और मिलते ही हैं, किंतु बहू! अपने गिरधरकी सेवामें व्यस्त रहनेके कारण तुमसे मिलना सहज नहीं हो पाता। सोचा कि दो घड़ी बैठकर बात ही करेंगे। इसी कारण तुम्हें बुलवाया है।' उत्तरमें मीरा कहती हैं 'बड़ी कृपा हुई। मैं तो हजूरकी बालक हूँ। यह दुर्भाग्य ही है मेरा कि राजकी कोई सेवा नहीं बन पायी मुझसे।' मीराने हाथ जोड़कर निवेदन किया। यह अहंकाररहित वृत्ति ही मीराका वास्तविक स्वरूप है।

३-निरन्तर सन्तुष्ट, योगी और शरीरको वशमें किये हुए (सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा)—भक्त **'सततं सन्तुष्टः'** तथा **'सन्तुष्टो येन केनचित्'** होता है। वह जिस-किसी तरह भी शरीरका निर्वाह कर लेता है। मीराका जीवन सरल, सादा एवं सात्त्विक है। वे सब समय प्रसन्नचित्त रहती हैं। उन्हें किसीसे कोई शिकायत नहीं है। वे अपनी जीवनसे पूर्णतः सन्तुष्ट हैं। उन्हें तो केवल अपने गिरधरलाल चाहिये। उनके लिये हरदम व्याकुल रहती हैं। राजकुमार भोजराजके साथ वैवाहिक गठबन्धनमें बँधनेके पश्चात् विदाईकी वेलामें रोती हुई माँने मीराके पास आकर पूछा—'बेटी! तेरे दाता हुकम (वीरमदेवजी)-ने दहेजमें कुछ भी कसर नहीं रखी है, फिर भी बेटी, कुछ और चाहिये तो कहो।' उत्तरमें मीराने कहा—

दै री माई अब म्हाँको गिरधर लाल।
प्यारे चरण की आन करति हौं, और न दे मणि लाल॥

माँने कहा—'ठाकुरजीको भले ही ले जा बेटा, पर उनके पीछे पगली होकर अपना कर्तव्य न भूल जाना।'

मीराको बचपनमें ही योगी श्रीनिवृत्तिनाथजी मिले, जिन्होंने उन्हें 'जन्म-योगिनी' माना। उनसे मीराने योग-साधना और कुण्डलिनी-जागरणके अनेक रहस्य सीखे। एक बार तो मीरा तीन दिनतक कुण्डलिनी-जागरण होनेपर समाधिमें अचेत रहीं। मीरा पद्मासन, सुप्त चक्रासन, शीर्षासन आदि सहज ही कर लेती थीं महाराणा विक्रमादित्यने मीराको छलसे भूतमहलमें बन्द कर दिया। जब छः दिन बाद रावत सलुम्बर बाबाने महाराणासे जबरन चाबियाँ लेकर भूतमहलका दरवाज खोला तो मीरा पद्मासन लगाये शान्त-चित्त बैठी थीं मीराने बचपनमें ही व्रजके एक प्रसिद्ध सन्त श्रीबिहारीदासजीसे संगीतकी शिक्षा ली, जो उन्हें परवर्ती कालमें अपने गिरधर गोपालसे अनन्य प्रेमकी अभिव्यक्तिमे सहायक हुई।

४-दृढ़ निश्चयवाला और मुझमें अर्पित मन-बुद्धिवाला (दृढनिश्चयः मय्यर्पितमनोबुद्धिः)—भक्त निश्चयात्मिका बुद्धिवाला होता है। मीराके जीवनमे उनके गिरधर गोपालके अतिरिक्त और किसीका महत्त्व नहीं था। वे तो स्पष्ट शब्दोंमें कहती थीं—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई॥
तात मात भ्रात बंधु आपणो न कोई।
अब तो बात फैल गई, जाणे सब कोई॥

अपनी ननद उदयकुँवरबाईके समझानेपर मीराने दो टूक उत्तर दे दिया—'मेरे पति गिरधर गोपाल हैं। मेर चूड़ा अमर है। वह किसीके आशीर्वादकी मोहताज नही है। इसपर भी मैं अपनी ओरसे प्रयत्न यही रखती हूँ कि मेरे कारण किसीको कष्ट न हो। इसलिये सबकी सेवामे मेरा यही निवेदन है कि भगवान्‌की सेवा-पूजा और भोग-रागसे समय बचा तो उसे आपकी सेवामें लग दूँगी। यदि न बचे तो आप सभी कृपापूर्वक मुझे क्षम कर दीजिये।' राजस्थानमें गणगौरका व्रत-पूजन सुहागिन स्त्रियोंके लिये अति आवश्यक माना जाता है। बड़ी महारानीकी दासी आकर मीराको पहली रात्रिको ही कह जाती है कि सूर्योदयसे पूर्व गणगौर-पूजनके लिये जान है। सबेरे-सबेरे दासी फिर आकर निवेदन करती है, किंतु मीराके लिये तो उनके प्रभु अभी-अभी जागे हैं। वे स्पष्ट कह देती हैं 'तुम जाकर मेरी ओरसे क्षमा माँग लेना

भोग और आरती करना शेष है।' यद्यपि इससे परिवारमें मीराके प्रति वैमनस्यता बढ़ जाती है, पर मीराका मन तो अपने प्रभुको अर्पित है, वह इतनी सुबह अपने प्रभुकी सेवा छोड़कर कैसे जा सकती है?

५-उद्विग्नता, हर्ष, ईर्ष्या, भयसे रहित—भगवान् कहते हैं कि भक्तसे कोई भी प्राणी उद्विग्न, क्षुब्ध या बेचैन नहीं होता और वह स्वयं भी किसी प्राणीसे विचलित नहीं होता। वह हर्ष, ईर्ष्या, भय और अशान्तिसे रहित होता है। इसीलिये वह मुझे प्रिय होता है।

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥

मीराका सबके प्रति व्यवहार समदर्शिताका रहता है। जीवनमें वे किसीसे भी ऊँची आवाजमें बात नहीं करती थीं। यद्यपि परिवारमें उनका विरोध हुआ, उन्हें जीवनमें आलोचना-टिप्पणियोंका सामना करना पड़ा था, पर वे अपने शान्त स्वभावसे सभी बातोंका उत्तर देती थीं। अहित करनेवालेके प्रति भी वे समभावसे रहती थीं। उन्हें किसीसे भी भय नहीं था। न वे विषके प्यालेसे भयभीत हुईं, न वे साँपोंसे डरीं, न नरभक्षी शेर उनको खानेके लिये दौड़ा और न ही भूतमहलमें उनके प्राण निकले।

एक रात्रि विक्रमादित्य खुले-बिखरे केश, बिना कमरबन्दका अंगरखा, हाथमें नंगी तलवार, नंगे पाँव, लाल सुलगती आँखें और क्रोधसे काँपती देह लेकर मीराके शयनकक्षमें आये तो मीरापर तलवारका वार करते समय दासियोंके मुखसे अनजाने ही चीख निकल पड़ी, पर मीरा तो जहाँ-की-तहाँ खड़ी मुसकरा रही थीं। जब महाराणा तलवारसे मीरापर अन्धाधुन्ध वार करने लगे तो वे हँस रही थीं। उन्हें हँसते देखकर महाराणाका हाथ रुक गया। भय और आश्चर्यसे वे आँखें फाड़-फाड़ करके जीती-जागती, हँसती मीराकी ओर देखने लगे। भक्तको तो अपने भगवान्‌पर अडिग विश्वास होता है—

जाको राखे साइयाँ, मार सकै न कोय।

६-अनपेक्ष, अकाम, पवित्र, चतुर, उदासीन, निःशोक, सर्वारम्भ एवं शुभाशुभ-परित्यागी—भक्तकी कोई अपेक्षा तथा कामना नहीं रहती है। यहाँतक कि ज्ञानी भक्त भगवान्‌से भी कोई चाहना नहीं करता है वह तो सदैव भगवान्‌का प्रियपात्र बनकर प्रत्येक परिस्थितिमें आत्मतृप्त रहता है। उसका अन्तःकरण शुद्ध होता है, वह छल-कपटरहित होता है तथा सबकी मंगल कामना करता रहता है।

मीरा उच्चकोटिकी भक्त थीं, वे संसारसे कुछ नहीं चाहती थीं। यद्यपि राठौर वंश और सिसोदिया वंशके सुप्रतिष्ठित राजघरानोंसे सम्बन्ध रखती हैं, महाराणा सांगाकी ज्येष्ठ पुत्रवधू हैं, लेकिन इनके वैभवकी ओरसे उदासीन हैं—

चुनड़ी के किये टूक ओढ़ लीन्ही लोई।
मोती मूँगे उतार दीन्हे तुलसीमाल पोई॥

सारंगपुरका नवाब चित्तौड़में अपने जेबसे हार निकालकर उन्हें भेंट करता है तथा बादशाह अकबर संगीतज्ञ तानसेनके साथ वृन्दावनमें मीराके दर्शनकर गिरधरके चरणोंमें हीरेकी बहुमूल्य कण्ठी समर्पित करता है, किंतु मीरा कहती हैं—'यह प्रजाका धन है, इसे दरिद्रनारायणकी सेवामें लगायें। जिस राज्यमें प्रजा सुखी रहती है, उस राज्यका नाश नहीं होता प्रभु तो भावके भूखे हैं।' मीराके सभी कर्म अपने प्रभुकी प्रसन्नताके लिये हैं। राजकुमार भोजराजके साथ वैवाहिक बन्धनमें बँधकर भी वे उनके साथ मित्रवत् रहीं तथा कभी भी भोग और संग्रहमें उनकी लिप्सा नहीं रही। यही कारण था कि प्रभुने मीराको तो दर्शन दिये ही, भोजराजके आग्रह तथा मीराके अनुरोधपर भोजराजको भी अन्तिम समयमें प्रभु-दर्शनका सौभाग्य मिला।

७-अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियोंमें सम, अनासक्त, अनिकेत, मौनी एवं स्थिरमति—भक्त वह है, जो शत्रु और मित्रको, मान-अपमानको, शीत-

मन और बुद्धिकी अनुकूलता-प्रतिकूलताको समभावसे देखता है, उनसे विचलित नहीं होता है। औरोंकी तरह सुख-दुःख, अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति, घटना, वस्तु, व्यक्ति, कालका अनुभव तो उसे होता है, पर वह उनसे प्रभावित नहीं होता है। इन सबमें वह सहज-स्वाभाविक रहता है, रहनेके स्थान तथा शरीरमें ममता और आसक्तिसे रहित होता है, मौन रहकर तथा एकान्तमें रहकर सब समय अपने कल्याणका चिन्तन करता रहता है और स्थितप्रज्ञकी भाँति कामना, स्पृहा, ममता और अहंकाररहित होकर आचरण करता है एवं अपने-आपसे अपने-आपमें ही सन्तुष्ट रहता है। गीता (१२।१८)-में भगवान् कहते हैं—

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥

भक्त होनेके नाते मीराके जीवनमें भी अनेक विपरीत परिस्थितियाँ आयीं, किंतु वे स्थिरमति रहती हुई सबको निरपेक्ष भावसे सहन करती रहीं। अपनी इच्छाके विरुद्ध विवाह करना पड़ा; अल्पकालमें ही पति भोजराजकी मृत्यु हो गयी। मेवाड़ वंशके पुरोधा ससुर महाराणा सांगाका असमय निधन हो गया, उदारमना देवर महाराणा रतनसिंहको भी पारिवारिक वैमनस्यके कारण अकाल काल-कवलित होना पड़ा। मेवाड़की राजगद्दी महाराणा विक्रमादित्य-जैसे निर्दयी एवं नृशंस व्यक्तिके हाथोंमें आ गयी, जिसने मीराको अनेक यातनाएँ दीं, जिनके कारण उन्हें अन्ततः मेवाड़ छोड़ना पड़ा, पर अपने पथसे वह डिगीं नहीं। रामभक्त गोस्वामी तुलसीदासजीको लिखे पत्रमें मीराने कहा—

बालपन में मीरा कीन्हीं, गिरधर लाल मिताई।
सो तो अब छूटत नहि क्यों हूँ, लगी लगन बरियाई॥
मेरे मात पिता सम तुम हो, हरिभक्तन सुखदाई।
मोको कहा उचित करिबो अब तो, लिखियो समुझाई।

गोस्वामी महाराजने प्रत्युत्तरमें लिखा—

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही॥

इसपर मीराने चित्तौड़ छोड़नेका निर्णय ले लिय और मेड़ता, पुष्कर होती हुई, कुछ वर्षोंतक वृन्दावनधाममे वास करके अन्ततः द्वारकामें द्वारकाधीशके विग्रहमें लीन हो गयीं। इस प्रकार भक्तशिरोमणि मीराने इस घो कलिकालमें भी अपना कल्याण करके समस्त भक्तों, साधकों तथा सांसारिक लोगोंके सम्मुख एक महान् जीवन-चरित प्रस्तुत किया है। वे लौकिक सुखोंसे न कभी हर्षित हुईं, न शत्रुबुद्धिवालोंसे उन्होंने कभी द्वेष किया, न विपरीत परिस्थितियोंमें कभी शोक किया। न किसी वस्तुकी कामना की, उन्होंने शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मोंका त्याग कर दिया था, इसीलिये प्रभुने उन्हे अपने भक्तके रूपमें अंगीकारकर अपनेमें समाहित कर लिया। ऐसे ही भक्तोंके लिये भगवान्ने गीता (१२।१७)-में कहा है—

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः॥

इस प्रकार मीराका सम्पूर्ण जीवन गीताके भक्तियोगपर ही आधारित था।

बोध-कथा—

मृत्युसे कौन बचा ?

गौतमी नामक स्त्रीका इकलौता पुत्र मर गया। शोक-सन्तप्त वह भगवान् बुद्धके पास आयी और उसे जिन्दा करनेको कहने लगी। भगवान् बुद्धने उससे सरसोंके कुछ दाने उस घरसे लानेको कहा, जहाँ कोई भी न मरा हो, वह गाँवमें गयी; परंतु ऐसा घर कोई न मिला। गौतमी समझ गयी कि मृत्यु अनिवार्य सत्य है। उस दिनसे गौतमीने मृत्युके दुःखका परित्याग कर दिया और अमर आत्माके कल्याणकी साधनामें जुट गयी।

मृत्युसे आजतक कोई नहीं बचा। वह निश्चित है। अतः इस शरीरके जानेका दुःख नहीं होना चाहिये।

जीवनकी प्रथम आवश्यकता—अभय

(श्रीशिवानन्दजी)

जीवन एक वृक्षकी भाँति है, जिसपर उल्लास एवं मधुर मुसकान पुष्पोंकी भाँति खिलते हैं तथा गुण एवं कर्म फलोंकी भाँति लगते हैं। भय एक ऐसा भीषण रोग है, जिससे आहत होकर जीवनरूपी वृक्ष हरा-भरा रहकर लहलहा नहीं सकता, इसके फूल कुम्हला जाते हैं और फल कड़ुए हो जाते हैं। भय समस्त मानवीय शक्तियोंको चाट जाता है और जीवन एक बोझ बनकर रह जाता है। यदि जीवनका आनन्द लेना है तो भयके निराकरणका उपाय करना आवश्यक है। जीवन एक सुखद वरदान है, यदि मनुष्य भयमुक्त हो। जीवन एक अभिशाप है, यदि मनुष्य भयग्रस्त हो। जीवनके रहस्यको खोजनेके लिये और पूर्ण सुख प्राप्त करनेके लिये निर्भय होना नितान्त आवश्यक है। भय मनुष्यकी जीवन-धाराको विषाक्त कर देता है और सम्पर्कमें आनेवाले अन्य व्यक्तियोंके जीवनमें भी विष घोल देता है।

यदि मनुष्य इस गूढ़ रहस्यको समझ ले कि समस्त भय उसका अपना थोपा हुआ एक बोझ है तो भयकी निवृत्ति सम्भव है। भय एक मिथ्या कल्पना है, जिसे एक काली चादरके समान हमने स्वयं ओढ़ लिया है। भय कोई विवशता नहीं है। भय तो एक नासमझी है, एक अबोधता है, भयंकर भूल है।

हमें यह भी स्पष्टत: समझ लेना चाहिये कि भयके निवारणमें कोई भी हमारी सहायता नहीं कर सकता। हमें अपनी सहायता स्वयं ही करनी होगी। हम निश्चय ही दृढ़ संकल्पके द्वारा इस काल्पनिक काली चादरको क्षणभरमें उतारकर फेंक सकते हैं, अवश्य भयमुक्त हो सकते हैं, जीवनमें मस्ती ला सकते हैं और दिन-रात सुखी रहकर जीवनका पूरा लाभ उठा सकते हैं, जो हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।

भयसे चिन्ता उत्पन्न होती है। भय और चिन्ता मनुष्यका दम घोंट देते हैं। भय और चिन्ता एक धोखा है, मृग-मरीचिका है, छल है, निस्सार है, अयथार्थ है, मिथ्या भयका भूत हमारी ही एक कोरी कल्पना है और इसमें कोई दम नहीं है तथा यदि हम दृढ़ संकल्पद्वारा इसका डटकर सामना कर लें तो क्षणभरमें ही यह विलुप्त हो जायगा।

जब हमें कोई विषम परिस्थिति घेरती है और ऐसा लगता है कि संकटके बादल मँडरा रहे हैं तो सहसा भयानक दुर्घटनाका भय मनको पकड़ लेता है। भय मनको दुर्बल कर देता है और मनुष्य परिस्थितिको सुधारने अथवा उसका सामना करनेके बजाय थककर हार मान लेता है और भाग्यको कोसने तथा परमात्माको दोष देने लगता है। यह मानवके दु:खकी सच्ची कहानी है।

भयकी ओषधि है विश्वास—ईश्वरकी कृपामें विश्वास, अपनी शक्तिपर विश्वास। ईश्वर की कृपासे मैं संकटका सामना कर लूँगा, संकटको पार कर लूँगा—यह विश्वास मनुष्यको आगे ले जाता है। यदि मेरा एक द्वार बन्द होगा तो प्रभु मेरे लिये दस अन्य द्वार खोल देंगे और मेरी कोई हानि कदापि न होगी। ईश्वर-विश्वासद्वारा मनुष्यका खोया हुआ आत्मविश्वास भी लौट आता है। ईश्वरकी सत्ता और ईश्वरकी अहैतुकी कृपापर विश्वास करनेवाला व्यक्ति कभी अधीर नहीं होता।

आत्मविश्वाससे धैर्य उत्पन्न होता है। धैर्य मनुष्यका सच्चा साथी होता है। धैर्य धारण करना सचमुच कठिन होता है, किन्तु उसके फल सदैव मीठे होते हैं।

हम सोयी हुई संकल्पशक्तिको जगायें और यह दृढ़ निश्चय कर लें कि हमें एक साहसी पुरुषकी भाँति कमर कसकर पूरी शक्तिसे विषम परिस्थितिका सामना करना होता है। यदि भरसक प्रयत्न करनेपर भी परिस्थिति प्रतिकूल ही रहे और लक्ष्यपूर्ति सम्भव न हो सके तो उसे प्रभु इच्छा मानकर सहर्ष स्वीकार कर लेना चाहिये। मनुष्य कर्म कर सकता है, फल तो प्रभुके अधीन है। गीताका अमर उपदेश है—'कर्म करना तेरा अधिकार है, फलपर तेरा कोई अधिकार नहीं है—'**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।**' (गीता २। ४७) मानवकी अपनी सीमा होती है

चीन देशके जगत्प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् कन्फ्युशसका कथन है कि 'भय और मृत्यु—इन दोनों-में भय अधिक भयंकर है; क्योंकि मृत्यु तो एक बार ही प्रहार करती है, किन्तु भय तो बार-बार हमें दबोच लेता है।' कन्फ्युशसके जीवन-वृत्तकी एक घटना प्रसिद्ध है। ये दार्शनिक संत भ्रमणप्रिय थे। किसी देशमें पहुँचनेपर वहाँके शासकने तीन पिंजरे उनके सामने रखे। एक पिंजरेमें चूहा था तथा उसके समीप सुन्दर खाद्य पदार्थ रखे थे, दूसरे पिंजरेमें एक बिल्ली थी, जिसके सामने दुग्धादि थे। एवं तीसरे पिंजरेमें एक श्येन (बाज) था, जिसके समक्ष मांस रखा था। तीनों कुछ नहीं खा रहे थे। शासकने इसका कारण महान् दार्शनिक कन्फ्युशससे पूछा। उन्होंने उत्तरमें कहा—'मूषक और बिल्लीको वर्तमान (श्येनकी उपस्थिति)-का भय है और वे यह नहीं सोच सकते हैं कि यदि मरना ही है तो भूखे न मरें तथा इनके विपरीत श्येनको भविष्यका भय है, जो लोभमिश्रित है। श्येन सामने रखे हुए भोजनका तिरस्कार करके यह भय मान रहा है कि कहीं मूषक और बिल्ली चले न जायँ। तीनों भयग्रस्त हैं और यदि इन तीनोंको इसी प्रकार पिंजरेमें पास-पास रहने दिया जाय तो भोजन-सामग्रीके समीपस्थ होनेपर भी ये मिथ्या भयके कारण भूखे ही मर जायँगे।' यह है भयकी भीषणता।

संस्कृतमें एक सूक्ति है, जिसका आशय यह है कि 'भयसे भीत होनेके बजाय उससे निपटनेका प्रयत्न करना चाहिये—**आगतं तु भयं वीक्ष्य नरः कुर्याद् यथोचितम्**'। भय कल्पना-जगत्की एक विचित्र वस्तु है, जिसका प्रभाव मनुष्यके व्यक्तित्वको प्रकम्प एवं असन्तुलनद्वारा जर्जरित एवं शोचनीय बना देता है। भयभीत मनुष्य सचमुच दयनीय होता है।

डरना और डराना पाप है। स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि 'भयभीत एवं दुर्बल होकर जीना पाप है।' भगवान् महावीर कहते थे कि 'साधकको सदा निर्भय रहना चाहिये।' नेपोलियन कहता था कि 'यदि किसीको हारनेका भय है तो वह निश्चय ही हारेगा' भय आने पर मनःस्थिति ऐसी हो जाती है कि मनुष्य अकारण ही कामना करने लगता है।

डरपोक मनुष्यको ही भय डरा सकता है। साहसी व्यक्तिके सामने भय डरकर भाग जाता है। भय यथार्थमें कुछ भी नहीं होता, उसकी कल्पना ही मनुष्यको विचलित, अधीर एवं अस्थिर बना देती है।

भय समस्त पापोंकी जड़ है तथा समस्त दुःखोंका मूल कारण है। भयभीत व्यक्ति कोई पुण्यकार्य नहीं कर सकता। भयभीत व्यक्ति मन खोलकर न सत्य कह सकता है, न सत्य आचरण कर सकता है। डरनेवाला व्यक्ति किसी दायित्वका निर्वाह भी नहीं कर सकता, वह प्रत्येक परिस्थितिमें चुप रहने और कतरानेका यत्न करता है। डरनेसे मानसिक विकास रुक जाता है और व्यक्तित्व भी विकसित नहीं हो सकता।

एक समय था, जब डंडा शिक्षाका एक आवश्यक अंग था। आधुनिक ज्ञान प्रेमके आधारपर शिक्षा देना उचित मानता है। थोड़ा भय कभी उपयोगी हो सकता है, किन्तु अतिशय भय होनेपर जीवनका विकास ही अवरुद्ध हो जाता है। '***भय बिनु होइ न प्रीति***'—यह सिद्धान्त आततायीके सम्बन्धमें है। पापप्रवृत्त आततायीको पाप-कर्मसे हटानेके लिये साहसपूर्वक डराना और दण्ड देना आवश्यक हो जाता है।

साहसकी महिमा अद्भुत है। एक साहसी, शूर व्यक्ति सैकड़ों डरपोक कायरोंपर विजय पा लेता है। साहसके साथ विवेक, नीति और सात्त्विकताका सम्मिश्रण होना चाहिये। विवेकहीन व्यक्तिका अतिसाहस मूर्खताका परिचायक होता है। साहसका अर्थ गुरुजन-अवज्ञा, उच्छृङ्खलता, अशिष्टता कदापि नहीं हो सकता।

यदि जीवनका पूरा उपभोग करना है तो निर्भय बनना आवश्यक है। भौतिक अथवा आध्यात्मिक विकासके लिये अभयकी प्रथम आवश्यकता है। समस्त प्रगतिका मूलमन्त्र भी अभय ही है। डरपोक आदमीको दुनिया जीने नहीं देती और ऊपर उठने नहीं देती। दुनियाके अन्याय और झूठे कलंकोंका मुकाबला करनेके लिये और आगे बढ़नेके लिये अभयका पाठ पढ़ना होगा। यदि संसारको कुछ देना चाहते हैं, संसारमें कुछ अच्छा कर्म

स्वतन्त्रता-संग्रामके वीर सेनानी लाला लाजपतराय कहते थे कि 'तेजीसे भागनेवाले इंसानके पीछे दुनियाके लोग भी भागते हैं और जो कोई भी आपके भागनेमें बाधा करता हो, उसे आप दूर फेंकते हुए चलें।'

कौन व्यक्ति निर्भय हो सकता है? जिसका अन्त:करण निर्मल है, जो दिन-रात परोपकार, पर-सेवामें निरत है, जो बलिदानी है, जो दूसरोंका भय दूर करनेमें संलग्न है, जो अपने व्यक्तिगत स्वार्थोंसे ऊपर उठ चुका है, जो क्षमाशील है, जो दूसरोंके लिये कष्ट उठाता है, जो तपस्वी है, जो देहाभिमान छोड़ चुका है, जो देहके प्रति अनासक्त है, जिसका मन प्रफुल्ल रहता है और जो सात्त्विकतासे ओत-प्रोत रहता है, जो कभी किसीको सताता नहीं है और अन्याय एवं अत्याचारका निस्स्वार्थ प्रतिरोध करता है।

ज्यों-ज्यों मनुष्य ईर्ष्या-द्वेष, घृणा आदि अपने विकारोंको दूर करता हुआ आत्मविजय प्राप्त कर लेता है तथा ज्यों-ज्यों उसके जीवनमें **'सत्यं शिवं सुन्दरम्'** का समावेश होने लगता है, त्यों-त्यों उसमें सात्त्विक अभयका उदय होने लगता है।

शुभ संकल्प एवं शुभकर्मके अभ्याससे अभय-भाव पुष्ट होता है तथा मनोबल बढ़ता है। अन्त:करणकी प्रवृत्तियोंको कुचलकर कुकर्म करनेसे मन निर्बल होता है और शुभ कर्मसम्पादनसे मन सशक्त होता है। अभय होनेपर मनुष्यको अपमान, मृत्यु और विनाशका भय भी नहीं सताता है। निन्द्य कर्मकी इच्छा जागनेपर संयमसे काम लेना चाहिये तथा शुभ कर्म करते रहनेका शिवसंकल्प लेना चाहिये—**'तन्मे मन: शिवसंकल्पमस्तु।'**

अभय और मैत्री परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। सब जीवोंकी कुशलताके लिये मंगलकामना करनेवाला मैत्रीपूर्ण व्यक्ति अभय होता है तथा शान्त रहता है। जो दूसरोंपर बर्बर अत्याचार करता है तथा अकारण दूसरोंको डराता है, वह स्वयं भी अवश्य डरेगा। जो स्वयं शान्त है, वह दूसरोंको शान्ति दे सकता है, जो स्वयं अभय है, वह दूसरोंको अभयका पाठ सिखा सकता है।

अभय आत्मसाधनाका प्राण-बिन्दु है। आनन्दस्वरूप परमात्माके अंश जीवमें सहज अभयका भाव विद्यमान है, जिसे हमें पहचानना और जगाना है। प्रेमपूर्ण अभयभावके उत्पन्न होनेपर चारों ओर मंगलमय विधानका दर्शन होने लगता है।

अथर्ववेदमें एक मन्त्र है, जिसे हमें हृदयंगम कर लेना चाहिये। बाह्य अथवा आन्तरिक अन्धकारमें मनुष्य अपनेको अकेला समझकर घबरा जाता है तथा जोरसे गाकर मनको थामता है। किन्तु साधकको सर्वदा सब दिशाएँ मंगलमय प्रतीत होती हैं—

अभयं मित्रादभयममित्राद्-
दभयं ज्ञातादभयं पुरो यः।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः
सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥

(१९।१५।६)

'हमारे लिये मित्रसे अभय हो, अमित्रसे अभय हो, ज्ञातसे अभय हो, जो सामने हो, उससे भय न हो, रात्रिमें अभय हो, दिनमें भी अभय हो। सभी दिशाएँ हमारे लिये मंगलकारी हो जायँ।'

अभय-प्राप्तिके सम्बन्धमें एक सन्तके ये विचार बड़े ही मननीय हैं—'भय हमें अनेक निमित्तोंसे होता है, पर यह है सर्वथा मिथ्या। जब सर्वत्र एकमात्र आत्मस्वरूप प्रभु ही सदा विराजित हैं, तब भय किस बातका? अपनेसे अपने-आपको भय होता है क्या? बिलकुल नहीं होता। अत: इस परम सत्यको स्वीकारकर हम भयकी वृत्तिको सदाके लिये कुचल दें। भय ही करना हो तो यह करें कि कहीं इस परम सत्यकी हमें विस्मृति न हो जाय, क्षणभरके लिये सर्वत्र पूर्ण एकमात्र प्रभुको छोड़कर हम किसी भी स्थानपर जगत्‌को न देखने लग जायँ। यह एक भय हमें प्रभुसे नित्य संयोग करानेवाला बन जायगा, हमें सदाके लिये निर्भय कर देगा।'

सन्तके इन वचनोंको हम अपने जीवनमें अपनाये और सदाके लिये भयसे मुक्त हो अमरपदको प्राप्त करें। दृढ़ संकल्प करते ही हमारी आधी विजय तो हो गयी, हमने आधा रास्ता पार कर लिया। विजयश्री-प्राप्तिका ध्रुव विश्वास धारण करना विजयका मूलमन्त्र है।

'सीय राममय सब जग जानी'

(श्रीसनातनकुमारजी वाजपेयी 'सनातन')

यदि ज्ञानदृष्टिसे देखा जाय तो यह संसार परमात्माका ही स्वरूप है। वही सृष्टिका कर्ता है एवं सृष्टिके रूपमें भी सर्वत्र वही है। चूँकि हमारा जीवन मायाके वशीभूत है, इसलिये भेदबुद्धि है। इस बुद्धिके कारण हमें यह संसार नाना रूपोंमें भासता है। किसीके प्रति उसके मनमें राग है, तो किसीके प्रति द्वेषका भाव है। संसारके सभी झगड़ोंके मूलमें यह भेदबुद्धि ही है।

परमात्मा तो विराट् है। सर्वत्र परिव्याप्त है। सभी रूपोंमें वही है। सृष्टिमें उसके सिवा अन्य कुछ भी नहीं है। वही वृक्ष है। हरे-हरे पत्तोंके रूपमें वही है। उनमें खिलनेवाले पुष्पोंके रंग और परागमें भी वही है। वही भौंरेके रूपमें उस परागका पान करता है। ऊँचे-ऊँचे पर्वत, हरे-भरे जंगल, लहराती नदियाँ, अगम सरोवर, सूर्य, चन्द्र, तारे, नीला-नीला आकाश आदि सभी उसीके रूप हैं।

वही परमात्मा मृग बनकर वनोंमें छलाँग लगाता है। पक्षी बनकर कलरव-गान करता है। अन्यान्य जीवोंके रूपमें तत्-तत् भूमिकाओंका निर्वहन करता है। उसके अतिरिक्त कहीं कुछ अन्य है ही नहीं।

ईशावास्योपनिषद्में कहा गया है—

ॐ ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

अर्थात् इस संसारमें जो कुछ भी है, वह परमात्माका ही रूप है। उसीके द्वारा निर्मित एवं संचालित है। वही संसार है और वही उसका संचालनकर्ता भी है।

गीतामें भगवान् योगेश्वर श्रीकृष्ण अर्जुनसे कहते हैं कि हे धनंजय! मुझसे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। मुझमें ही यह दृश्यमान प्रपंच उसी भाँति स्थित है, जैसे मालाके धागेमें मणियाँ।

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव॥

(गीता ७।७)

गीताके ही दसवें अध्यायमें भगवान्ने कहा है—

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च॥

अर्थात् हे अर्जुन! सब जीवोंमें विराजमान मैं आत्मा हूँ और उनका आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ। संक्षेपमें कहनेका तात्पर्य यह है कि इस सृष्टिमें जो कुछ भी है, सभी परमात्माके ही रूप हैं। फिर द्वेष किससे? सभी हमारे हैं। परमपिताकी सन्तान हैं। हमारे ही भाई हैं। यही सोचकर हमारे सन्तोंने विश्वबन्धुत्वका नारा दिया है और सबके कल्याणकी कामना की है—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

ये सभी तत्त्व भारतकी संस्कृतिके कण-कणमें परिव्याप्त हैं। जिसका पूर्ण विश्व आदर करता है। हमारे वेदोंकी भी यही मान्यता है कि ईश्वर ही सब रूपोंमें एवं सर्वत्र परिव्याप्त है, किंतु वह सबसे अलिप्त है। वेदोंने उस विराट् परमेश्वरके स्वरूपका जो चित्रण किया है, वह अपने-आपमें अद्वितीय है। पुरुषसूक्तमें इसका विस्तृत वर्णन है।

चूँकि गोस्वामी तुलसीदासजीने सभी धर्मग्रन्थोंका गहन अध्ययन किया था। अतः उनका ही सार तत्त्व श्रीरामचरितमानसमें निहित है। परमात्माके विराट् स्वरूपका वर्णन श्रीरामचरितमानसके लंकाकाण्डमें मन्दोदरीद्वारा उन्होंने इस प्रकार कराया है। जो वेदोंके पुरुषसूक्तका भावानुवाद ही है। यथा—

बिस्वरूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु॥
पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग अँग बिश्रामा।
भृकुटि बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला।
जासु घ्रान अस्विनीकुमारा। निसि अरु दिवस निमेष अपारा।
श्रवन दिसा दस बेद बखानी। मारुत स्वास निगम निज बानी।
अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला।
आनन अनल अंबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा।
रोम राजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा।
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु का बहु कलपना।
अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान॥

अपनी समस्त विभूतियोंके साक्षात् दर्शन कराते हैं। यथा—

पश्यामि देवांस्तव देव देहे
सर्वांस्तथा भूतविशेषसङ्घान्।
ब्रह्माणमीशं कमलासनस्थ-
मृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान्॥
अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं
पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्।
नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिं
पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप॥

(गीता ११। १५-१६)

श्रीमद्भगवद्गीताके तेरहवें अध्यायमें भी यही बात कही गयी है। यथा—

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च॥
ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥
यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते।
सर्वत्रावस्थितो देहे तथात्मा नोपलिप्यते॥

(गीता १३। १६-१७, ३२)

परमात्माका कथन है कि सभी रूप मेरे ही हैं। मैं ही सर्वत्र परिव्याप्त हूँ। मेरे सहस्रों कान, नेत्र, मुख, हाथ, पैर आदि हैं। सर्वत्र मेरी दृष्टि है। मैं सर्वका द्रष्टा हूँ। यथा—

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च॥

(गीता १३। १३-१४)

यह है परमात्माका स्वरूप। परमात्मासे परे कहीं कुछ भी नहीं है। श्रीरामचरितमानसमें भगवान् शंकरद्वारा सभी देवताओं एवं ब्रह्माजीसे कहा गया है कि—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥
अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥

जिस प्रकार अग्नि सर्वत्र परिव्याप्त है, ठीक वैसे ही परमात्मा भी सर्वत्र व्याप्त हैं, किंतु वे केवल सच्चे प्रेमसे ही प्रकट होते हैं। छल-कपट और आडम्बरसे

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।

इस पूर्ण सृष्टिमें मुख्यतः दो तत्त्वोंकी प्रधानता है यथा—(१) प्रकृति तथा (२) पुरुष।

प्रकृतिको ही हम माया कहते हैं। वही प्रकृतिरूप माँ सीता हैं। श्रीराधा हैं। लक्ष्मी हैं और भगवती पार्वती हैं। पुरुषरूप परम ब्रह्म परमात्मा हैं।

जब कभी परमात्माके हृदयमें क्रीड़ा करनेका भाव जाग्रत् होता है। तब उसके मनमें एक संकल्प जाग्रत होता है '**एकोऽहम् बहु स्याम्।**' उसके इस संकल्पके जागते ही मूल प्रकृति सक्रिय हो जाती है, जिससे महत्तत्त्वकी उत्पत्ति होती है। महत्तत्त्वसे अहंकारकी उत्पत्ति होती है। अहंकारके तीन भेद होते हैं—(१) सात्त्विक, (२) राजस एवं (३) तामस।

तामस अहंकारके विकार हैं—आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध क्रमशः इनके विषय हैं। ये ही विषय समस्त जीवोंके बन्धनके कारण हैं। इन्हींके कारण वह भवसागरसे मुक्त नहीं हो पाता है।

राजस अहंकारसे मन, इन्द्रियोंके देवता यथा—दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, विष्णु, मित्र और प्रजापतिकी उत्पत्ति हुई। सात्त्विक अहंकारसे पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, यथा—नाक, कान, आँख, त्वचा एवं रसना तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ क्रमशः हाथ, पैर, मुख, गुदा एवं जननेन्द्रियकी उत्पत्ति हुई। इस प्रकार इन चौबीस तत्त्वोंसे यह संसार बना है, जिनमें तीन गुणोंकी अहम भूमिका है।

यह सृष्टि प्रकृतिका ही कार्य है। परमात्मा तो सबसे निर्लिप्त है। अतः सबकी जननी भगवती सीता हैं और श्रीराम आत्मारूप जगत्के पिता हैं। संसारके सभी जीव उन्हीं माँके द्वारा उत्पन्न किये गये हैं। वे सभीकी माँ हैं। उद्भव, पालन और लयकी भूमिकाका निर्वहन क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिव करते हैं, जो स्वयं ईश्वर-स्वरूप हैं।

प्रभु राम ही इस समूचे जगत्के अधिष्ठान हैं कारणोंके भी कारण हैं। वही सभी रूपोंमें व्याप्त हैं उनसे परे कहीं कुछ भी नहीं है। वे साकार हैं। निराकार हैं। अलख हैं। निरंजन हैं। व्यक्त हैं। अव्यक्त हैं। मन,

हैं। सबसे परे हैं। समूची सृष्टि प्रकृतिका ही कार्य है और सर्वत्र आत्मारूपमें परमात्मा ही विराजमान हैं।

भक्तोंके प्रेमके वशमें होकर वे साकार भी हो जाते हैं। उनको आनन्द प्रदान करनेके लिये वे तरह-तरहकी मानव-लीला करते हैं। *'छछिया भर छाछ पे'* गोपियोंके साथ नृत्य करते हैं। माँ यशोदाके बन्धनमें बँध जाते हैं। माँ कौसल्याकी गोदमें किलकारियाँ भरते हैं। गोपियोंके साथ मधुर रासलीला रचाते हैं। घर-घर माखन-चोरी करते हैं। जटायुको अपनी गोदमें बैठाकर उसके घावोंको पोंछते हैं। उसके मरनेपर अश्रु बहाते हैं। उसकी अन्त्येष्टि अपने हाथोंसे करते हैं। निषादको अपना मित्र बनाते हैं। शबरीके बेरोंका भोग लगाते हैं और हर जगह उसके स्वादकी चर्चा करते हैं।

यह है परमात्माका वास्तविक रूप, जिसका बोध गोस्वामी तुलसीदासजीको है। चूँकि वे एक महान् सन्त थे। अत: सम्पूर्ण सृष्टिमें वे उन्हींके दर्शन करते हैं इसलिये उनका यह कथन सर्वथा उचित है कि—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।

काश, हमारी-आपकी भी ऐसी ही दृष्टि बने कि यह सारा जगत् हमारे प्रभुका रूप है, तो हमारा कल्याण होनेमें विलम्ब नहीं लगेगा। तभी हमें परम शान्तिकी प्राप्ति होगी।

बोध-कथा—

लोभ—विनाशका कारण

कालिन्दीके महापण्डित कौत्स स्नानकर भगवती उषाका वन्दन कर रहे थे। एक घड़ियाल उन्हें काफी दूरसे ताक रहा था, किंतु कौत्स ऐसी ऊँची और सुदृढ़ शिलापर बैठे थे कि घड़ियाल वहाँतक पहुँच भी नहीं सकता था।

निदान उसने युक्तिसे काम लिया। यमुनाकी तलहटीसे रत्नोंका ढेर उठाकर उसने ऊपरकी ओर उछाला। मोतियोंका ढेर कौत्सके आस-पास जाकर बिखर गया। कौत्सने चारों ओर बिखरे मोती और मणि-मुक्ताएँ देखीं, तो अन्त:करणमें छिपा उनका लोभ जाग पड़ा। मनमें विलासितापूर्ण जीवनके चित्र बनने लग गये। कोई और न आ जाय, इस भयसे कौत्स जल्दी-जल्दी वह रत्न बीनकर अपने उत्तरीय वस्त्रमें बाँधने लगे।

घड़ियालको अवसर मिल गया। जलसे ऊपर शीश निकालकर उसने कहा—'आचार्यश्रेष्ठ! आपके दर्शनकर मैं कृतकृत्य हो गया। यह तो मेरी तुच्छ भेंट थी। आपको जल्दी न हो, तो आप मुझे त्रिवेणीतक पहुँचा दें। मैं वहाँका रास्ता नहीं जानता, यदि इस पुण्य कार्यमें आप मेरी मदद करें; तो मैं इन तुच्छ मोतियोंसे भी बढ़कर पाँच मुक्ताहार दे सकता हूँ।'

कौत्सके हर्षका ठिकाना न रहा। उन्होंने घड़ियालका प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। वे उसे त्रिवेणीतक ले चलनेको सहमत हो गये। क्षणिक लोभ और लालचने उनका विवेक ही नष्ट कर दिया। घड़ियालने उन्हें सादर पीठपर बैठाया और वहाँसे चल पड़ा। अभी वह सौ गज चलकर बीच धारमें पहुँचा ही था कि उसे हँसी आ गयी। घड़ियालको हँसते देखकर कौत्स ठिठके और पूछा—'तात! असमय आपकी हँसीका रहस्य क्या है?'

घड़ियाल एक बार बीभत्स हँसी हँसा और फिर दार्शनिककी-सी मुद्रा बनाकर बोला—'आचार्यवर! आप जीवनभर दूसरोंको उपदेश देते रहे कि विनाश सांसारिक आकर्षणके रूपमें आता है, क्षणिक तुष्टि भी प्रदान करता है, पर एक बार मनुष्यको अपने शिकंजेमें पा जानेवाली वासनाएँ मनुष्यको वहाँ ले जाती हैं, जहाँ सिवाय विनाशके कुछ नहीं होता। दूसरोंको उपदेश देनेके बावजूद भी आप यह तथ्य न समझ सके और आज एक लालचने ही आपको सर्वनाशके पास पहुँचा दिया।' यह कहकर उसने कौत्सको उछाला और एक ही क्षणमें उदरस्थ कर लिया।

सच है, लोभादि सांसारिक आकर्षणोंमें जो अडिग नहीं रह सकता, वासनाएँ उसे उसी तरह खा जाती हैं, जैसे कौत्सको घड़ियालने धोखा देकर चट कर लिया।

ईश्वर

(श्रीमोहनलालजी पारख)

पृथ्वीके आरम्भसे आजतक अरबों-खरबों लोग हुए हैं, जिनकी अपनी अनुभूतिके आधारपर यह दृढ़ मान्यता रही है कि सब प्राणियोंका रचनाकार सर्वशक्तिमान् कोई है, चाहे नाम जो भी रहा हो। सुविधाके लिये हम उन्हें ईश्वर कहेंगे। ईश्वरके अस्तित्वकी बात करें तो, यदि सच्चे मनसे की गयी प्रार्थना ईश्वरने न सुनी होती तो विभिन्न नामोंवाले प्रार्थना-स्थलोंपर ताले लग गये होते।

प्रश्न उठता है कि यदि ईश्वर है तो दिखायी क्यों नहीं देता? इसका उत्तर है—क्या फूलकी सुगन्ध दिखायी देती है? क्या हवा दिखायी देती है? ये अनुभव की जाती हैं।

स्वामी विवेकानन्दजीके गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंसने ऐसा ही प्रश्न पूछनेवालेसे कहा कि दिनमें तारे दिखायी नहीं देते तो क्या तुम कहोगे कि तारे हैं ही नहीं? परमाणु बमकी विस्फोटक शक्ति दिखायी नहीं देती, तो क्या कहोगे कि ऐसा कुछ होता ही नहीं? बिजलीके तारोंमें विद्युत्की शक्ति कहाँ दिखायी देती है?

यदि सदाचारी, परोपकारी, सच्चे-अच्छे व्यक्तिमें जगत्के रचनाकारको पानेकी ऐसी तड़पन हो जाय, जैसी पानीमें डुबकी लगानेके थोड़ी देर बाद पानीसे बाहर निकलनेके लिये होती है तो उसे ईश्वर दर्शन देते हैं।

ऐसे अनन्त तथ्य हैं, जिनसे आपके विचारमें ईश्वरके होनेके प्रति सन्देहोंका निराकरण हो सकता है। इनमेंसे कुछ इस प्रकार हैं—

(१) नर और नारीकी शरीर-रचना। क्या निर्जीव प्रकृति नर और नारीमें शादीकी तीव्र इच्छा पैदा कर सकती है? शुक्राणु और अण्डाणुके मेलके बाद गर्भाशयतक जाना, गर्भाशयकी दीवालसे जुड़ना, भोजननलीका बनना, भोजननलीसे भ्रूणका जुड़ना—ये सब व्यवस्था करनेवाली क्या कोई अलौकिक शक्ति नहीं है? मस्तिष्क, आँखें, कान, हृदय, किडनी, लीवर, रक्त आदि क्या ये किसी विस्तारसे जानकारियाँ प्राप्त करो तो दाँतों तले अँगुली दबाकर कहने लग जाओगे कि ऐसा सब करनेवाली कोई अलौकिक शक्ति है, जिसे हम ईश्वर कहते हैं जिनको आधुनिक विज्ञानके जानकार और चिकित्सा-विशेषज्ञ नहीं कर सकते, उन्हें करनेवाला निश्चितरूपसे कोई है, जिसे हम ईश्वर कहते हैं।

(२) महात्मा गांधी गोलमेज सम्मेलनमें भाग लेने लन्दन गये थे। गांधीजीसे मिलने महान् वैज्ञानिक आईन्स्टीन जर्मनीसे लन्दन गये। दोनों महापुरुषोंके वार्तालापमें ईश्वरकी बात भी आयी। आईन्स्टीनने ग्रह, नक्षत्र, तारे, नीहारिका आदिके विषयमें कहा कि इस विशाल सृष्टिके नियम और क्रममें ऐसा व्यापक सूत्र है, जिसके कारण भगवान्के अस्तित्वको स्वीकार करना ही पड़ता है। आईन्स्टीनने दृढ़तापूर्वक कहा है कि संसारका संचालन करनेवाला निश्चितरूपसे कोई है, पर हम उसे देख नहीं सकते और न ही उसकी कल्पना कर सकते हैं

(३) सन् १९०८ ई० में साइबेरियामें टगस्का नदीके पास अन्तरिक्षसे एक विशाल उल्का पृथ्वीसे टकरानेवाली थी, यदि ऐसा हो जाता तो पृथ्वीपर मानव तथा अन्य प्राणी नहीं बचते। उनका केवल नाम रह गया होता। वैज्ञानिकोंके अनुसार अज्ञात स्रोतसे एक उड़नतश्तरी आयी, जो उल्कासे टकरायी और उसे हवामें ही नष्ट कर दिया। हवामें ही उसके नष्ट हो जानेपर भी छः सौ मील दूरतक भूकम्पमापी यन्त्रोंने पृथ्वीपर कम्पन दर्ज किया। विस्फोटकी तीव्रता ४० मेगावाटके बमके विस्फोट जितनी थी। हवामें ऊपर नष्ट कर दिये जानेके बाद भी यह तीव्रता हिरोशिमापर गिराये गये परमाणु बमसे दो हजार गुना अधिक थी लगभग ४०० मील दूर स्थित रेलकी पटरियाँ थरथराने लगीं। उस उल्काका वजन करीब एक अरब टन था उड़नतश्तरी जब उल्कासे टकरायी, तब वह १० किलोमीटर ऊपर थी। इस घटनाके समय पृथ्वीका गुरुत्वाकर्षण-

(४) टॉलस्टायने कहा है कि बहुत तर्क-वितर्कके बाद अनुभव हुआ कि सबका आदिकारण एक है, अगर उसे कोई नाम देना पड़े तो उसे ईश्वर कहना पड़ेगा।

(५) शेक्सपीयरने लिखा है कि जब सूर्य अस्त होने लगे, चारों तरफ अँधेरा छा जाय और इन्सान उस घनघोर अँधेरेमें अकेला, असहाय, मजबूर और लाचार हो जाय और सब अपने द्वार बन्द कर लें, उस समय भगवान्का द्वार ही खुला मिलता है। भगवान् अपना द्वार सच्चे मनसे पुकारनेवालेके लिये कभी बन्द नहीं करते।

(६) बाबरकी सेनाके अत्याचारोंका गुरुनानकने विरोध किया। इसपर गुरुजीको जेल भेज दिया गया और वहाँ उनसे चक्की पिसवानेका आदेश दिया। जेलमें सैनिकोंने देखा कि गुरुजी ईश्वरके ध्यानमें बैठे हैं, लेकिन चक्की अपने-आप चल रही है और गेहूँ पिसता जा रहा है। सैनिक बाबरके पास गये और सारी बात बतायी। उसने गुरुजीसे माफी माँगी और सम्मानपूर्वक उन्हें छोड़ दिया।

(७) महाराष्ट्रके वारकरी वैष्णव लोग आषाढ़ मासकी एकादशीके दिन पण्ढरपुर (गाँवका नाम)-में भगवान् श्रीविट्ठल (विष्णु)-के दर्शनके लिये प्रायः जाते थे। पण्ढरपुर राजा कृष्णदेवरायके राज्यमें था। एक बार राजा कृष्णदेवराय पण्ढरपुर गये। वे श्रीविट्ठलकी मूर्ति अपनी राजधानी ले गये। एकादशीको भक्तोंको यह ज्ञात हुआ कि राजा भगवान्की मूर्तिको अपनी राजधानी ले गये हैं, यह जानकर वे बहुत दुखी हुए। भक्त भानुरायजी भगवान्के दर्शनके लिये विजयनगर गये। जब वे वहाँ पहुँचे, तब समय मध्यरात्रिका था। आपके मन्दिर पहुँचनेपर दरवाजेपर लगे ताले अपने-आप खुल गये। श्रीविट्ठलके दर्शनसे भानुरायजीको अपार आनन्द हुआ और उन्होंने प्रार्थना की कि वे पुनः पण्ढरपुर पधारें। भगवान्ने सच्चे आर्तहृदयसे निकली प्रार्थना सुनी। यह प्रकट करनेके लिये उन्होंने पुष्पमालाके साथ नवरत्नहार भानुदासके हाथोंपर गिरा दिया। इसे प्रभुका प्रसाद मानकर भानुदासके मन्दिरसे बाहर निकलनेपर सब दरवाजे अपने-आप बन्द हो गये। नवरत्नहार न होनेकी बात राजाको तुंगभद्रा नदीके किनारे भानुराय श्रीविट्ठलके ध्यानमें मग्न थे। उनके पास पुष्पहारके साथ नवरत्नहार दिखायी दिया। राजाने चोरको फाँसीकी सजा दी। भानुदासको फाँसीके लिये ले जाया गया। कर्मचारियोंने देखा कि फाँसीके फन्देपर एक लता निकल आयी है और उसमें सुन्दर फूल लगे हुए हैं। राजाको तुरंत सूचित किया गया। राजाको अपनी गलतीका आभास हो गया कि जिसे चोरीके अपराधमें फाँसी की सजा दी, वह तो कोई महान् भगवद्भक्त है। राजाने भानुदासके साथ मूर्तिको पुनः पंढरपुर भेज दिया।

(८) भारतके सन्तोंमें एक सन्त नीमकरोली बाबा हुए हैं। वे रेलगाड़ीसे जा रहे थे। अंग्रेज टिकट-कलेक्टरने बिना टिकट यात्रा करनेके कारण उन्हें उतार दिया। वे एक वृक्षके नीचे आसन लगाकर ध्यानमग्न हो गये। उनके उतरनेके बाद ट्रेनको चलानेके लिये दो घण्टेतक प्रयास किये गये। ट्रेनके पुनः न चलनेका कोई कारण समझमें न आया। यात्रियोंके कहनेपर टिकट-कलेक्टर उनके पास गया और ट्रेनमें बैठनेका निवेदन किया। उनके बैठनेपर ट्रेन चली।

(९) दिल्लीके आर्य निवासमें बाबा गोपालदासजी रहते थे। उन्हें ईश्वरसे प्राप्त सिद्धियोंको विदेशी राजदूतों और प्रतिष्ठित व्यक्तियोंने स्वयं देखा था और कई समाचार-पत्रोंने प्रकाशित किया था। हिन्दुस्तान टाइम्समें भी इस प्रकार छपा था—

(क) बाबा गोपालदासजी ईंटके छोटे-छोटे टुकड़े गोपालजीकी मूर्तिके सामने रख देते थे। लगभग आध मिनट बाद वे उन टुकड़ोंको उठा लेते थे। ईंटके टुकड़े मिश्रीके टुकड़े हो जाते थे। बाबा उन टुकड़ोंको आये हुए और आनेवाले लोगोंको दे देते थे। उक्त बाबाके पास जर्मनी, जापान आदि देशोंके राजदूत भी गये थे।

(ख) कई प्रतिष्ठित सज्जनोंके सामने श्रीजुगल-किशोरजी बिरलाने ताँबेकी एक चमची केलेके हरे पत्तेमें लपेटकर अपने हाथमें ली। वे बाबाजीके कहे अनुसार सूर्यके सामने खड़े हो गये। बाबाजी प्रभुका ध्यान करते हुए उनका नाम जपते रहे। दो-तीन मिनट बाद चमची

रखी है।

(ग) जर्मन राजदूत अपने साथ नम्बरवाली ईंट लाया और उसे मिश्रीमें बदलनेको कहा। बाबाने उसे केलेके पत्तेमें लपेटवाकर लकड़ीकी चौकीपर रखवाया। तीन-चार मिनटतक बाबाजी ईश्वरका ध्यान करते रहे। केलेके पत्तेको हटानेपर सब अचम्भित रह गये। वह ईंट मिश्री बन चुकी थी। वह ईंट श्रीजुगलकिशोरजी बिरलाके यहाँ अभीतक रखी हुई है।

(घ) एक प्रसंगपर किसी सज्जनने पानीको दूध बनानेको कहा। बाबा गोपालदासजीने लकड़ीके एक पटियेपर पानीकी बाल्टी रखवायी। उसपर एक तौलिया रखकर स्वयं दूर खड़े हो गये और सबसे कहा कि उस बाल्टीको एक बार फिरसे देख लें। बाल्टी पानीसे भरी थी। बाबाजी ईश्वरका ध्यान करने लगे। उसके बाद उन्होंने बाल्टीमेंसे एक कटोरी पानीकी भरी और सबको वह पानी दिया। सबने कहा कि यह तो पानी ही है। बाबाजी गोपालजीकी मूर्तिके पास जाकर बैठ गये। बाल्टी गमछेसे ढँक दी और एक लाल फूल, जो गोपालजीकी मूर्तिपर चढ़ाया था, अपने हाथसे बाल्टीमें डाल दिया। उसके बाद जब गमछा हटाया तो अन्दर दूध था। सबको एक-एक कटोरी दूध दिया।

बाबा गोपालदासजीकी सिद्धियोंके ऐसे अनेक चमत्कार गोस्वामी गणेशदत्तजीने सुनाये थे। उन दिनों एक छोटी-सी पुस्तक भी प्रकाशित हुई थी।

(१०) ब्रिटिश शासनकालमें पाण्डिचेरीके चीफ जस्टिस श्रीजेकालियेरने लिखा है—एक बार एक साधुने मुझे कुछ लिखकर अपने पास रखनेको कहा। मैंने कागजपर लिखकर जेबमें रखा। थोड़ी देरमें साधुने एक कागजपर वही लिख दिया, जो मैंने लिखा था।

(११) भारतके प्रधानमन्त्री रहे मोरारजी देसाई आई०सी०एस० परीक्षा पास थे। सन् १९५६ में वे मुम्बईमें किसी शासकीय पदपर अधिकारी थे। उनके पास एक कन्नड़ भाई आये और कहा कि आप तीन सवाल चाहे जिस भाषामें लिखिये। मैं उन्हें बिना पढ़े उनके जवाब उसी भाषामें दे दूँगा। उन्होंने एक और कागज उलटा रख दिया। उस सन्तने तीनों प्रश्नोंके उत्तर गुजराती भाषामें ही लिखे। सभी उत्तर सही थे

(१२) महाराष्ट्रमें मोरारजी देसाईके घनिष्ट परिचित एक सेक्रेटरी थे, जो बिहारके थे। वे सेक्रेटरी साहब आई०सी०एस० थे। वे एक ऐसे सन्तके शिष्य थे, जो पानीके ऊपर चल सकते थे। सेक्रेटरी साहब एक बार अपने लड़केको लेकर उन महात्माके पास गये। लड़केने साधुसे कहा कि आप पानीपर चलकर दिखाइये। इसपर साधुने लड़केसे कहा—जरा अपना हाथ सीधा करो लड़केने अपना हाथ सीधा किया। तब वे साधु उसपर चढ़ गये। लड़केको उनका जरा भी वजन हाथपर नहीं लगा। सेक्रेटरी साहबने उनसे कहा मेरे हाथपर भी चढ़िये न। साधुने उनके हाथपर भी चढ़कर दिखाया उन्हें भी जरा भी वजन नहीं लगा।

कम्प्यूटरके आविष्कारसे पहले यह तर्क दिया जाता था कि ईश्वर संसारके अरबों प्राणियोंका लेखा-जोखा कैसे रखते होंगे। आज दो अरब जानकारियाँ रखनेवाले कम्प्यूटरका विकास होनेके बाद इस प्रश्नका निदान हो गया। ईश्वरका कम्प्यूटर चलता रहता है यदि ऐसा है तो उसी समय उसे सजा क्यों नहीं देते? व्यक्तिके पूर्व एवं वर्तमान जन्मोंके पुण्य और सत्कर्म जबतक ज्यादा हैं, तबतक वह पलड़ा भारी रहेगा। जब व्यक्तिके सत्कर्मोंका प्रभाव उसके गलत आचरण, गलत कर्मोंके कारण कम होते-होते समाप्त हो जायगा, तब गलत बातोंका प्रभाव चालू होगा और उनके दुष्प्रभाव शुरू होंगे।

जैसे करोड़ों लोगोंमें जिसका मोबाइल होता है, उसपर घण्टी जाती है। उसी तरह व्यक्तिका किया हुआ कर्म उसका फल लेकर उसके पास जाता है।

जगत्के रचनाकारके अनन्त उपकारोंका विचार करके हिन्दू उनके प्रति आभार व्यक्त करनेके लिये उनकी मूर्ति बनाकर उनकी पूजा-अर्चना करते हैं। दूसरा कारण इससे ध्यानकी एकाग्रता होती है। सन्त तो यहाँतक कहते हैं कि अगर एक मिनट भी संसारकी बातोंको भूलकर संसारके रचनाकारका ध्यान हो जाय तो

श्रीयमुनाजी—परिचय एवं माहात्म्य

(श्रीशरदजी अग्रवाल)

यमुना संसारकी प्राचीनतम नदियोंमेंसे एक है। सनातन परम्परामें इसे सात श्रेष्ठतम पुण्यदायी सरिताओंमेंसे एक माना गया है—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

यमुनाका प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेदमें नदीसूक्तमें प्राप्त होता है। वस्तुतः ऋग्वेदमें यमुनाका उल्लेख तीन स्थलोंपर मिलता है।[१] अथर्ववेद, ऐतरेयब्राह्मण, शतपथब्राह्मण आदि अन्य वैदिक साहित्य[२] में भी यमुना उल्लिखित हैं। इसके अनन्तर पुराणेतिहास ग्रन्थोंमें यमुना और उनके निकटवर्ती तीर्थोंका परिचय अनेक स्थलोंपर प्राप्त है। वाल्मीकीयरामायण[३] एवं महाभारत[४] में इनका वर्णन विस्तारसे आया है। श्रीमद्भागवतमें तो यमुनातटवर्ती व्रजभूमिपर भगवान् श्रीकृष्णकी दिव्य लीलाओंका वर्णन सर्वत्र प्रसिद्ध ही है। आधिदैविक रूपमें तो कालिन्दी (यमुना) भगवान् श्रीकृष्णकी अष्ट-पट्टमहिषियोंमेंसे ही एक हैं। गर्गसंहिताके माधुर्यखण्डके अन्तर्गत सम्पूर्ण श्रीयमुनापंचांग (कवच, स्तोत्र, पटल, पद्धति एवं सहस्रनाम) भी उपलब्ध है।[५] इसी प्रकार अध्यात्मरामायण[६], कूर्मपुराण[७], विष्णुपुराण[८], हरिवंशपुराण[९], अश्वघोषकृत बुद्धचरित[१०], कालिदासकृत रघुवंश[११] इत्यादि संस्कृत वाङ्मयके प्रख्यात ग्रन्थोंमें यमुनाविषयक सन्दर्भ एवं विवरण प्राप्त होते हैं। भगवान् व्यासका जन्म भी यमुनाके मध्यवर्ती एक द्वीपपर हुआ था।

भगवान् श्रीआदिशंकराचार्यकृत यमुनाष्टकद्वय, महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यकृत यमुनाष्टक, पण्डितराज जगन्नाथकृत अमृतलहरी (यमुनास्तुति), वृन्दावनवासी पण्डित श्रीदुर्गादत्तकृत यमुनालहरी, गोस्वामी तुलसीदासकृत यमुनास्तुति इत्यादि अनेकानेक स्तोत्र लोकप्रसिद्ध हैं।

महाप्रभु श्रीवल्लाभाचार्यजीकी पुष्टिमार्गीय परम्परामें श्रीयमुनाजीका विशेष स्थान है तथा यमुनाजीके स्तुतिपरक अनेक पदोंका गायन भी होता है। इस परम्परामें श्रीयमुनाजीका हाथमें माला लिये पुरुषवेष धारण किया हुआ स्वरूप बड़ा प्रसिद्ध है, जो वस्तुतः मथुरामें यमुनातटके विश्रामघाटकी मानमनौवल-लीलाका दृश्य है। एक बार श्रीराधारानीने विचार किया कि हमने तो कई बार मानका हठ ठाना, और भगवान्‌ने हमें मनाया क्यों न आज भगवान् हठ करें और हम उन्हें मनावें लीला निश्चित हुई—भगवान् स्त्रीवेष धारण करके रूठ गये और राधाजी पुरुषवेष धारणकर उन्हें मनाने लगीं, परंतु असफल रहीं, तब थक-हारकर उन्होंने यमुनाजीसे सहायता माँगी। यमुनाजीने प्रसन्न होकर पुरुषवेष धारण किया और हाथमें माला लेकर स्त्रीवेष धरे बैठे भगवान् श्रीकृष्णके सम्मुख उपस्थित हुईं। भगवान् तो मात्र राधाजीसे रूठे बैठे थे, सो यमुनाजीका स्वरूप देखते ही उनकी हँसी छूट गयी और साथ ही वे मानका हठ भी छोड़ बैठे। श्रीयमुनाजीके सहयोगसे श्रीराधाजी भी श्रीकृष्णको पराजित करके प्रसन्न हो गयीं। इसीलिये

१. ऋग्वेद १०।७५।५ (नदीसूक्तमें) एवं ५।५२।१७; ७।१८।१९
२. अथर्ववेद ४।९।१०; ऐतरेयब्राह्मण ८।२३; शतपथब्राह्मण १३।५।४।११
३. वाल्मीकीय रामायण २।११।६; २।५५।२२; ७।६२।१८
४. महाभारत, आदि० १००।४५; १०४।८; १०४।१३; वन० ८४।४४; ३२४।२५-२६
५. गर्गसंहिता माधुर्यखण्ड अ० १५—१९
६. अध्यात्मरामायण २।६।४२
७. कूर्मपुराण १।३९।१-३
८. विष्णुपुराण ५।३।१८
९. हरिवंशपुराण १।९।९; २। अ० ११—१२
१०. बुद्धचरित ४।७६

श्रीयमुनाजीका यह स्वरूप श्रीकृष्णकी प्रसन्नता-प्राप्तिके लिये वल्लभ-सम्प्रदायमें विशेष प्रसिद्ध है।

पौराणिक आख्यानोंके अनुसार यमुनाका जन्म भगवान् सूर्य एवं प्रजापति विश्वकर्माकी पुत्री संज्ञाकी कन्याके रूपमें हुआ था। श्राद्धदेव प्रजापति वैवस्वत मनु एवं यमकी ये छोटी बहन हैं। यम एवं यमी (यमुना)-का जन्म सूर्य एवं संज्ञाकी यमल (जुड़वा) सन्तानोंके रूपमें हुआ था।

एक बार भगवान् सूर्यका अपरिमित तेज न सह सकनेके कारण सूर्यपत्नी संज्ञा अपने स्थानपर अपनी छायाको नियुक्त करके वनमें तपस्या करने चली गयीं। छायाको भी सूर्यदेवसे तीन सन्तानें हुईं, तत्पश्चात् वे संज्ञाकी सन्तानोंके साथ पक्षपात करने लगीं। इसी कारण कालान्तरमें जब सूर्यको यह ज्ञात हुआ तब वे बड़े क्रुद्ध हुए, परंतु समस्त घटनाक्रमोंका परिज्ञान होनेपर उन्होंने विश्वकर्माकी सहायतासे अपने तेजको कम करवाया और संज्ञाको भी प्रेमपूर्वक पुनः घर ले आये। उन्होंने अपनी समस्त सन्तानोंको वात्सल्यपूर्वक भाँति-भाँतिके वर दिये। इसी क्रममें उन्होंने अपनी पुत्री यमीको नदियोंमें श्रेष्ठ लोकपावनी कलिन्दपरिक्षेत्रवाहिनी यमुनानदी होनेका वरदान दिया—

यमुनाञ्च नदीञ्चक्रे कालिन्दान्तरवाहिनीम्।

(मार्कण्डेयपुराण १०८। १९)

महर्षि मार्कण्डेयजी कहते हैं—आदित्यकी छोटी कन्या लोकपावनी यमुना नदियोंमें श्रेष्ठ है—

यवीयसी तु या कन्याऽदित्यस्याभूद् द्विजोत्तम।
अभवत् सा सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकपावनी॥

(मार्कण्डेयपुराण १०८। २६)

यमुनाके सूर्यकन्या, कालिन्दी, कलिन्दसुता, यमभगिनी इत्यादि अनेक नाम लोकमें प्रचलित हैं। अमरकोशमें यमुनाके चार नाम बताये गये हैं—कालिन्दी, सूर्यतनया, यमुना, शमनस्वसा। जबकि गर्गसंहिताका प्राचीन यमुनासहस्रनाम तो प्रसिद्ध ही है।

यमुनाकी उत्पत्ति पर्वतराज हिमालयके मध्य स्थित कलिन्दपर्वतसे होती है। इसीलिये यमुनाका एक नाम

चोटी बन्दरपूँछके वायव्यकोणमें प्रायः ११ किलोमीटरकी दूरीपर स्थित है। २१ हजार फीटकी ऊँचाईपर स्थित यह स्थान सदैव बर्फसे ढँका रहता है तथा यहाँसे यमुनाकी धारा गिरिकन्दराओंके भूमिगत रहते हुए यमुनोत्रीमें प्रकट होती है। इसीलिये जनसामान्य यमुनोत्तरीको ही यमुनाका उद्गम-स्थान मानता है तथा यमुनोत्रीमें प्रतिवर्ष सहस्रों तीर्थयात्री आकर भगवती यमुनाके प्राकट्य-स्थलका दर्शन करके कृतकृत्य होते हैं। यह स्थान उत्तराखण्ड राज्यके उत्तरकाशी जिलेमें स्थित है।

यहाँ कई गरम पानीके कुण्ड हैं, जिनका जल खौलता रहता है। पारम्परिक तीर्थयात्री आज भी कपड़ेमें बाँधकर चावल, आलू आदि उनमें डुबा देते हैं और वे पदार्थ पक जाते हैं। इस प्रकार वहाँ भोजन बनानेके लिये चूल्हा नहीं जलाना पड़ता। इन कुण्डोंमें स्नान करना सम्भव नहीं और यमुनाजल इतना शीतल है कि उसमें स्नान करना भी अशक्य है। इसलिये गरम तथा शीतल जल मिलाकर स्नान करनेके कुण्ड बने हैं।

बहुत ऊँचाईपर कलिन्दगिरिसे हिम पिघलकर कई धाराओंमें गिरता है। वहाँ शीत इतना है कि बार-बार झरनोंका पानी जमता-पिघलता है। ऐसे शीतल स्थानमें गरम पानीका झरना एवं कुण्ड, और पानी भी इतना उबलता हुआ कि जिसमें हाथ डालनेसे फफोले पड़ जायँ!

यमुनोत्तरीका स्थान संकीर्ण है। छोटी-सी धर्मशाला है, छोटा-सा यमुनाजीका मन्दिर है। कहा जाता है कि महर्षि असितका यहाँ आश्रम था। वे नित्य स्नान करने गंगाजी जाते और निवास करते यहाँ यमुनोत्तरीमें। वृद्धावस्थामें दुर्गम पर्वतीय मार्ग नित्य पार करना कठिन हो गया। तब गंगाजीने अपना एक छोटा झरना यमुना-किनारे ऋषिके आश्रमपर प्रकट कर दिया। वह उज्ज्वल पानीका झरना आज भी वहाँ है। हिमालयमें गंगा और यमुनाकी धाराएँ एक हो गयी होतीं यदि मध्यमें दण्ड पर्वत न आ जाता। देहरादूनके समीप भी दोनों धाराएँ बहुत पास आ जाती हैं।

यह उद्गमस्थान अत्यन्त भव्य है। इस स्थानकी शोभा और ऊर्जस्विता अद्भुत है।

यमुनोत्रीसे निकलकर यमुनाकी धारा अनेकानेक पहाड़ी तटों तथा घाटियोंको लाँघते हुए दून घाटीमें पहुँचती है। फिर मैदानकी ओर सहारनपुर, कुरुक्षेत्र, पानीपत, दिल्ली, आगरा, फिरोजाबाद, बटेश्वर, इटावा, कालपी, हमीरपुर होते हुए प्रयागमें संगम-स्थलपर गंगामें विलीन हो जाती है। यमुनाके इस प्रवाहमें संगमसे पूर्व ही अनेक छोटी-बड़ी सहायक नदियाँ यथा—तमसा (टोंस), हिन्डन, शारदा, सिरमौर, केन, चम्बल आदि उसमें मिलकर उसे विराट् रूप प्रदान कर देती हैं। यमुनोत्रीसे प्रयाग-संगमतक यमुनाकी कुल लम्बाई १४३६ कि०मी० है। यमुनोत्रीसे प्रयागतक यमुना एक बड़े मत्स्याकार भूभाग (दोआब)-से पृथक् होते हुए प्राय: गंगाके समानान्तर प्रवाहित होती है। शास्त्रोंमें 'अन्तर्वेदी' नामक इस भूभागको पुण्यभूमि बताया गया है।

वैदिक कालसे ही यमुनाकी महिमा अत्यन्त प्रतिष्ठित रही है। इसी कारण कई चक्रवर्ती राजाओंद्वारा यमुनातटपर अश्वमेध आदि विशाल यज्ञोंका बार-बार आयोजन करनेके प्रमाण मिलते हैं। महाभारतके अनुसार यमुनातटपर विशाल यज्ञोंका आयोजन करनेवालोंमें राजा भरत, राजर्षि मान्धाता, सृंजयपुत्र दानिशिरोमणि सहदेव, उनके पुत्र सोमक, राजा अम्बरीष एवं महाराज शान्तनु इत्यादि प्रमुख हैं। अनेक ब्रह्मर्षियोंसे सेवित यमुना पुण्यमयी नदी है। यमुनाके तटपर महर्षि अगस्त्यने भी घोर तपस्या की थी।

श्रीयमुनाजीका माहात्म्य

तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता।
समागता महाभाग यमुना तत्र निम्नगा॥
येनैव नि:सृता गङ्गा तेनैव यमुना गता।
योजनानां सहस्रेषु कीर्तनात् पापनाशिनी॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च यमुना यत्र निस्सृता।
सर्वपापविनिर्मुक्त: पुनात्यासप्तमं कुलम्॥

(कूर्मपुराण-ब्राह्मीसंहिता पू० ३९। १—३)

'भगवान् सूर्यकी पुत्री यमुना तीनों लोकोंमें विख्यात जहाँसे गंगाजी निकली हैं। हजारों योजनोंसे भी यमुनाक स्मरण-कीर्तन पापनाशक है। यमुनोत्तरीमें स्नान तथ जलकणका भी पान करनेवाला व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और इसके सात कुलतक पवित्र हो जाते हैं।

श्रीयमुनाजीका पर्व

यमदेव और यमुना दोनोंके सहोदर ही नहीं, बल्कि यमल (जुड़वा) होनेके भी कारण उनमें अतिशय प्रेम था, परंतु जब यमराज यमलोककी व्यवस्था सँभालनेमे अतिशय व्यस्त रहनेके कारण बहुत समयतक अपनी बहन यमुनासे मिलने न जा सके, तो एक दिन यमुन स्वयं ही उनसे मिलने जा पहुँचीं। यमुनाको आय देखकर यमराज अति प्रसन्न हुए और प्रेमपूर्वक उनक स्वागत-सत्कारकर कोई वर माँगनेको कहा। तब यमुनाजी ने यही वर माँगा कि आज कार्तिक शुक्ल द्वितीया है, इस दिन जो भाई अपनी बहनके यहाँ उसके हाथका बन भोजन करे एवं उसका सत्कार करे, तो उसकी आयुवृद्धि होती है तथा भाईका आतिथ्य-सत्कार करनेवाली बहनक भी सौभाग्यसुख बना रहता है।

मथुरामें विश्रामघाटपर भैयादूज (कार्तिक शुक्ल द्वितीया)-के दिन भाई-बहनोंद्वारा परस्पर हाथ पकड़कर यमुनामें स्नान करनेका बड़ा महत्त्व है। कहते हैं कि यमराजने अपनी बहन यमुनाको यह वरदान भी दिया कि जो भाई-बहन भैयादूजके दिन यमुनामें परस्पर हाथ पकड़कर स्नान करेंगे तो उन्हें यमयातना नहीं भोगनी पड़ेगी। इसीलिये आज भी भैयादूजके दिन लाखो श्रद्धालु यमुनामें स्नान करके पुण्यलाभ प्राप्त करते हैं

इस दिन परिकरोंसहित यमराज एवं यमुनादेवीके पूजनका शास्त्रोंमें विशेष माहात्म्य बताया गया है।

श्रीयमुनाजीका ध्यान

श्यामामम्भोजनेत्रां सघनघनरुचिं रत्नमञ्जीरकूजत्-
काञ्चीकेयूरयुक्तां कनकमणिमये बिभ्रतीं कुण्डले द्वे।
भ्राजच्छ्रीनीलवस्त्रां स्फुरदमलचलद्धारभारां मनोज्ञां
ध्यायेन्मार्तण्डपुत्रीं तनुकिरणचयोद्दीप्तदीपाभिरामाम्॥

जो श्यामा (श्यामवर्णा एवं षोडश वर्षकी

शोभाको छीने लेते हैं, घनीभूत मेघके समान जिनकी नीलकान्ति है, जो रत्नोंद्वारा निर्मित बजते हुए नूपुर और झनकारती हुई करधनी एवं केयूर आदि आभूषणोंसे युक्त हैं तथा कानोंमें सुवर्ण एवं मणिनिर्मित दो कुण्डल धारण करती हैं, दीप्तिमती नीली साड़ीपर चमकते हुए गजमौक्तिकके चंचल हारका भार वहन करनेसे अत्यन्त मनोहर जान पड़ती हैं, शरीरसे छिटकती हुई किरणोंकी राशिसे उद्दीप्त होनेके कारण जिनकी प्रज्वलित दीपमालाके समान शोभा हो रही है, उन सूर्यनन्दिनी यमुनाजीका मैं ध्यान करता हूँ।

श्रीयमुनाजीकी उपासना

यमुनाजीकी विशेष प्रसन्नताके लिये साधकको शास्त्रीय विधि-विधानपूर्वक उनके एकादशाक्षरी मन्त्रका जप करना चाहिये—

'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिन्द्यै देव्यै नमः'

इस मन्त्रके अनुष्ठानकी सम्पूर्ण विधिके परिज्ञानके लिये गर्गसंहिता* में दिये गये श्रीयमुनापंचांगको देखना चाहिये। भगवती श्रीयमुनाजीके भक्त आज भी श्रद्धा-भक्तिसे युक्त होकर उनको मन्त्र, स्तोत्र, भजन आदिसे प्रसन्नकर उनके कृपापात्र बनते हैं।

यमुनातटपर श्राद्ध-महिमा

यमुना तो सर्वत्र ही पुण्यदायी होनेसे देव एवं पितृकार्योंके लिये प्रशस्त हैं, परंतु मथुरापुरीमें इनकी विशेष महिमा है। विष्णुपुराणमें स्पष्ट लिखा है कि जो व्यक्ति ज्येष्ठ शुक्ल द्वादशीको मथुरामें उपवासपूर्वक श्रीयमुनाजीमें स्नान करके वहाँ अपने पितरोंके निमित्त पिण्डदान करता है, उसके पितर अत्यन्त भाग्यवान् होते हैं; क्योंकि उन सबका उद्धार हो जाता है—

धन्यानां कुलजः पिण्डान् यमुनायां प्रदापयेत्॥

(विष्णुपुराण ६।८।३८)

यमुनाजलकी विशिष्टताएँ

भारतवर्षमें जितनी भी प्राचीन नदियाँ हैं, उनके जलमें पृथक्-पृथक् विशिष्ट गुण पाये जाते हैं, इसी प्रकार यमुनाजलमें भी कई विशिष्टताएँ हैं, यथा—यमुनाका जल किंचित् वायुकारक तथा गरिष्ठ होता है। यमुनामें नियमित स्नान करनेवालोंका वर्ण किंचित् श्यामल हो जाता है। गंगा आदिके जलकी भाँति ही यमुनाके जलमें भी हानिकारक कीटाणुओंको नष्ट करनेकी विशेष शक्ति होती है तथा इसे गर्म करनेसे यह शक्ति नष्ट हो जाती है। वैज्ञानिक परीक्षणोंसे यह सिद्ध भी हो चुका है। हमारे पूर्वज प्राचीनकालसे ही इन तथ्योंसे परिचित थे, इसीलिये वे यमुनाजलका भाँति-भाँतिसे सेवन करते थे तथा उसे गर्म करना प्रशस्त नहीं मानते थे। वस्तुतः यमुनाका जल तन तथा मन दोनोंके मलका हरण करता है।

हिमालयसे निकलनेवाली नदियोंमें जो रोग- प्रतिरोधक क्षमता पायी जाती है, वह नदियोंके अविरल प्रवहमान रहनेसे बढ़ती है तथा बड़े-बड़े बाँध आदि बन जानेके कारण प्राकृतिक प्रवाह खण्डित होनेसे घट जाती है।

यदि हम पुण्यदायी नदियोंका सम्पूर्ण भौतिक एवं आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें उनके दोहनको स्वार्थपूर्ण आर्थिक लिप्सासे मुक्त करना होगा और साथ ही नगर-नगरमें मल-जल लेकर गिरते नालों एवं औद्योगिक कारखानोंसे निकले प्रदूषित पदार्थोंको गिरनेसे शीघ्रातिशीघ्र रोकना होगा, तभी हम गंगा-यमुना आदि नदियोंके मूल स्वरूप और उनके गौरवकी रक्षा कर सकते हैं। दिल्लीसे आगरातक अत्यधिक प्रदूषणके कारण यमुना नदीका जल भी बहुत प्रदूषित रहता है, यहाँ स्थिति अत्यन्त दुःखद एवं शोचनीय है। द्वापरयुगमें भी जब कालियनागने व्रजभूमिके निकट यमुनामें डेरा जमाकर पर्यावरणको भयंकररूपसे प्रदूषित कर दिया, तब भगवान् श्रीकृष्णने उससे यमुनाको मुक्त कराकर निर्मलता प्रदान की थी। आज यमुनामें प्रदूषणकी स्थितिको देखते हुए पुनः उसके उद्धारके लिये सबको समवेत प्रयास करने होंगे।

ध्यान रहे, इस सनातन धर्मभूमिमें प्रवाहित गंगा-यमुना, नर्मदा आदि सभी पवित्र एवं पुण्यदायी नदियाँ हमारे राष्ट्रकी धमनियाँ हैं। यदि हम इनको संरक्षित करेंगे, तभी राष्ट्र स्वस्थ एवं सुदृढ़ बनेगा।

---

* श्रीगर्गसंहिताका अब एक नवीन सम्पूर्ण सानुवाद संस्करण (कोड २२०७) भी गीताप्रेससे प्रकाशित हो गया है, इसमें सम्पूर्ण श्रीयमुना-

वैराग्यभावका आधान

(श्रीमती डॉ० रंजनाजी शर्मा)

अध्यात्मपथपर आरूढ़ होनेके लिये चित्तका विषयोंसे विरक्त होना प्राथमिक आवश्यकता है। इस क्रममें वैराग्य क्या है? पहले हम यह जानें। वैराग्यके स्वरूपको जान लेनेके बाद उसकी प्राप्तिके उपायोंको समझना भी परम आवश्यक है। महर्षि पतंजलिने योगदर्शनमें वैराग्यसाधक नानाविध उपायोंकी चर्चा की है, जिनमें सरलतम उपाय है—'**वीतरागविषयं वा चित्तम्**'।

वीतराग पुरुषोंको विषय करनेवाला चित्त समाधिस्थ हो जाता है। अर्थात् संसारके पदार्थोंमें आसक्ति न होनेका नाम ही वैराग्य है। एक दृष्टान्त स्मरण हो आया, एक बार शुकदेवजी किसी सरोवरके निकटसे निकले। सरोवरमें बहुत-सी स्त्रियाँ विवस्त्र हो स्नान कर रही थीं, कुछ क्षणों पश्चात् उसी सरोवरके पाससे वेदव्यास भी निकले, उन्हें देखकर स्त्रियाँ सकुचाने लगीं और जलसे बाहर आकर जल्दी-जल्दी वस्त्र धारण करने लगीं और हाथ जोड़कर विनय करने लगीं। वेदव्यासजीको बड़ा आश्चर्य हुआ कि मेरा युवा पुत्र शुकदेव अभी-अभी यहाँसे निकला है। उसको देखकर तो इन स्त्रियोंने कुछ भी लज्जा नहीं की, किंतु मुझ वृद्धको देख झट वस्त्र पहन लिये। इसका क्या रहस्य है? उन्होंने स्त्रियोंसे यह बात पूछी।

वे सभी बोलीं—महात्मन्! शुकदेवजीके मनमें यह पुरुष है, यह स्त्री है, यह वृक्ष है, यह पशु है, यह पक्षी है—ऐसा भेदभाव नहीं है, परंतु आपके मनमें अभीतक यह भेद विद्यमान है, इसीसे हम सभीने सकुचाते हुए वस्त्र धारण कर लिये। इससे शुकदेवजीकी उपरामताका पता लगता है। जगत्में हैं, पर जगत्से स्पृहा नहीं है।

वैराग्य बहुत ही रहस्यका विषय है और निःसन्देह इसकी पराकाष्ठा उन्हीं लोगोंमें होती है, जो जीवन्मुक्त महात्मा हैं। सच्चा वैराग्य तो वह है, जिसमें सांसारिक भोग-पदार्थोंके प्रति अरुचि हो जाती है। जब इनके प्रति अरुचि होती है, तभी परमात्माके स्वरूपका ज्ञान होता

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते। ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रता॥

(जो अविद्याकी उपासना करते हैं, वे अन्धकारमें प्रवेश करते हैं और जो विद्यामें रत हैं, वे उससे भी अधिक अन्धकारमें प्रवेश करते हैं।)

वास्तवमें साधकको सच्चा, दृढ़ वैराग्य उपार्जन करना चाहिये। किसी नाटकीय अभिनयका नाम वैराग्य नहीं है। ऐसे लोग भी देखनेमें आते हैं, जो मात्र दिखावेके लिये मौन धारण कर लेते हैं, कोई आसन लगाकर बैठ जाता है, कोई विभूति रमाकर, कोई केश बढ़ाकर, कोई धूनी तपता है; क्योंकि उनका तात्पर्य मात्र उदरपूर्ति होती है।

उदरनिमित्तं बहुकृतवेषः

हमारा अभिप्राय उन साधकोंके लिये कदापि नहीं है, जो संयमके लिये, अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये या साधन बढ़नेपर ऐसा करते हैं, उनकी कौन निन्दा कर सकता है? जो पुरुष या स्त्री चित्तवृत्तियोंको भगवच्चिन्तनमें लगाकर सच्ची वैराग्य-वृत्तिसे बाह्याभ्यन्तर त्याग करते हैं, उन लोगोंकी तो शास्त्र भी प्रशंसा करते हैं। वैराग्यकी प्राप्तिके लिये आरम्भमें संसारके विषय-भोगोंके परिणाम देखने चाहिये और हमें जानना चाहिये कि ये कितने भयावह हैं। हमें भयसे या उन्हें दुःखरूप समझकर उनसे घृणा करके उनका त्याग करना चाहिये। यदि बार-बार वैराग्यकी भावना हो, त्यागकी भावनाका मनन करना हो, संसार तो असार है, ऐसी भावना हो, मृत व्यक्ति, सूने महल जिनमें राजा-महाराजा रहा करते थे, पर अब वहाँ कुछ भी नहीं है; यह सब देखकर और उन सबकी स्थिति देखकर स्वयमेव विराग उत्पन्न हो जाता है। इसके लिये पुत्र-परिवार, धन-मकान, मान-बड़ाई, कीर्ति-कान्ति इन सबसे मनको हटाना चाहिये—

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्॥
असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।

मनमें आसक्ति और अहंकारका अभाव हो एवं जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, रोग आदिमें दु:ख-दोषोंका विचार हो; पुत्र, स्त्री, घर, धन आदिमें मोहका अभाव हो और जब संसारकी सभी वस्तुएँ दु:खद प्रतीत होने लगें तो वैराग्य निश्चित रूपसे होगा—

परिणामतापसंस्कारदु:खैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दु:खमेव सर्वं विवेकिन:।

(परिणामदु:ख, तापदु:ख, संस्कारदु:ख—जो विवेकी हैं, उनके लिये तो समस्त विषय सुख-दु:खरूप एक समान ही हैं।)

इन तीनों दु:खोंको हमें समझना होगा। यथा—

'परिणामदु:खता' आरम्भमें जो सुख रमणीय और सुखरूप लगता है, परंतु परिणाममें महान् दु:खदायी होता है।

विषयेन्द्रियसंयोगाद् यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥

(गीता १८। ३८)

जो सुख विषय और इन्द्रियोंके संयोगसे उत्पन्न होता है, वह यद्यपि भोग-कालमें अमृतके समान लगता है, परंतु परिणाममें वह विषसदृश होता है। यह सुख राजस कहलाता है। जब मनुष्यको दाद होती है, उसमें खुजली करनेपर बहुत सुख मिलता है, परंतु खुजाते-खुजाते जब जलन होने लगती है, तब महान् दु:ख होता है। गोस्वामीजीके शब्दोंमें—

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदायी॥

तापदु:खता—विषयोंकी प्राप्ति फिर उनके संरक्षण तथा अन्तत: उनके नाशमें भी सदा जलन बनी रहती है। अत: पुत्र, स्त्री, स्वामी, धन, मकान—ये सभी हर समय जलानेवाले हैं—

अर्थानामर्जने दु:खमर्जितानां च रक्षणे।
आये दु:खं व्यये दु:खं धिगर्था:कष्टसंश्रया:॥

संस्कारदु:खता—जिस व्यक्तिके पास विषय-भोगोंका बाहुल्य होता है और कभी समय ऐसा भी आता है कि वह सब तरहसे दीन-हीन हो जाता है, कितना कष्टप्रद होगा। यही संस्कारदु:खता है। हमें इस बातपर भी विशेष गौर करना चाहिये कि संसारके सभी विषय-सुख सभी अवस्थामें दु:ख ही देते हैं।

गुण-वृत्तियोंके विरोधजन्य दु:ख—हमारे भीतर सात्त्विक, राजसी, तामसी वृत्तियाँ रहती हैं, जो सदा झगड़ती रहती हैं। उदाहरणस्वरूप किसी व्यक्तिको झूठी गवाही देनेपर दस हजार रुपये मिल रहे हैं, तो सात्त्विक वृत्ति कहती है—पाप करके रुपये नहीं चाहिये, भीख माँगकर खा लेंगे, पर झूठी गवाही नहीं देंगे।

दूसरी तरफ राजसी वृत्ति कहती है, जरा-से झूठसे क्या होगा, गरीबी दूर हो जायगी। इसके बाद नहीं करेंगे। इस झगड़ेमें चित्त अत्यन्त विचलित और किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। ऐसेमें मात्र परमात्मा हमारी मदद करते हैं। उनका नाम-जप और उनके स्वरूपका निरन्तर स्मरण करते रहना चाहिये। फलस्वरूप हृदयका मल जैसे-जैसे दूर होता है, वैसे-वैसे उज्ज्वलता आती रहती है। हृदयमें वैराग्यकी लहरें उठने लगती हैं, विषयानुराग स्वयं ही दूर हो जाता है। अतएव इस असार-संसारसे मन हटाकर परमात्माकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करते रहना चाहिये।

आसुरीसम्पदाके नाशके उपाय

दारिद्र्यनाशनं दानं शीलं दुर्गतिनाशनम्।
अज्ञाननाशिनी प्रज्ञा भावना भयनाशिनी॥

दानसे दरिद्रताका, शीलसे दुर्गतिका, उत्तम बुद्धिसे अज्ञानका तथा भक्तिसे भयका नाश होता है।

[चाणक्यनीति ५। ११]

गेहूँके पौधेमें रोगनाशक ईश्वरप्रदत्त अपूर्व गुण

(श्रीचिन्तामणिजी पाण्डेय)

गेहूँका प्रयोग हमलोग सभी बारहों मास भोजनमें करते रहते हैं, पर उसमें क्या गुण है, इसपर लोगोंने बहुत कम विचार किया है। मोटे तौरसे हमलोग इतना ही जानते हैं कि यह एक उत्तम शक्तिदायक खाद्य-पदार्थ है। कुछ वैद्योंने यह भी पता लगाया है कि मुख्य शक्ति गेहूँके चोकरमें है, जिसे प्राय: लोग आटा छान लेनेके बाद फेंक देते हैं अथवा जानवरोंको खानेको दे देते हैं; स्वयं नहीं खाते हैं। हानिकारक महीन आटा या मैदा खाना पसन्द करते हैं और लाभदायक चोकरसहित मोटा आटा खाना नहीं पसन्द करते। फल यह होता है कि शक्तिवर्धक वस्तु न खाकर गेहूँके अन्दरका शक्तिरहित गूदा (मैदा) खाते रहनेसे हमलोग जीवनभर अनेक प्रकारकी बीमारियोंसे पीड़ित रहा करते हैं। प्राकृतिक चिकित्सक लोग प्राय: चोकरसहित आटा खानेपर जोर देते हैं, जिससे पेटकी तमाम बीमारियाँ अच्छी हो जाती हैं। लोग यह जानते हैं कि २४ घंटे भिगोकर सबेरे गेहूँका नाश्ता करनेसे अथवा चोकरका हलुआ खानेसे शक्ति आती है। फिर भी लोग झंझटसे बचनेके लिये डॉक्टरी दवाईके फेरमें अधिक रहते हैं; जिनके सेवनसे नयी-नयी बीमारियाँ दिनोदिन बढ़ती जा रही हैं, फिर भी लोग चेतते नहीं हैं। स्त्रियाँ तो विशेषकर दवाकी भक्तिनी हो गयी हैं। घरमें रोज काममें आनेवाली और भी अनेक चीजें हैं, जिनके उचित प्रयोगसे अनेक साधारण बीमारियाँ अच्छी हो सकती हैं, जिन्हें कि हमारी बड़ी-बूढ़ी माताएँ अधिक जानती थीं, पर आजकलकी नयी स्त्रियाँ उनके बनानेकी झंझटसे बचनेके लिये बनी-बनायी दवाइयोंका प्रयोग ही ज्यादा पसन्द करती हैं, फिर चाहे उनसे दिन-दिन स्वास्थ्य गिरता ही क्यों न जाय।

इसी उपर्युक्त गेहूँके सम्बन्धमें आज हम 'कल्याण' के पाठकोंको एक नयी बात सुनाना चाहते हैं—

अमेरिकाकी एक महिला डॉक्टरने गेहूँकी शक्तिके सम्बन्धमें बहुत अनुसन्धान तथा अनेकानेक प्रयोग करके एक बड़ी पुस्तक लिखी है, जिसका नाम है 'Why suffer? Answer-Wheat Grass Manna' इसकी लेखिका अनुसन्धानोंका पूरा विवरण दिया है और अनेकानेक असाध्य रोगियोंपर गेहूँके छोटे-छोटे पौधोंका रस (Wheat Grass Juice) देकर उनके कठिन-से-कठिन रोग अच्छे किये हैं। वे कहती हैं कि 'संसारमें ऐसा कोई रोग नहीं है, जो इस रसके सेवनसे अच्छा न हो सके।' कैंसरके बड़े-बड़े भयंकर रोगी उन्होंने अच्छे किये हैं, जिन्हें डॉक्टरोंने असाध्य समझकर जवाब दे दिया था और वे मरणप्राय अवस्थामें अस्पतालसे निकाल दिये गये थे ऐसी हितकर चीज यह अद्भुत Wheat Grass Juice साबित हुई है। अनेकानेक भगंदर, बवासीर, मधुमेह, गठियाबाई, पीलियाज्वर, दमा, खाँसी वगैरहके पुराने-से-पुराने असाध्य रोगी उन्होंने इस साधारणसे रससे अच्छे किये हैं। बुढ़ापेकी कमजोरी दूर करनेमें तो यह रामबाण ही है। अमेरिकाके अनेकानेक बड़े-बड़े डाक्टरोंने इस बातका समर्थन किया है और अब बम्बई एवं गुजरात प्रान्तमें भी अनेक लोग इसका प्रयोग करके लाभ उठा रहे हैं। भयंकर फोड़ों और घावोंपर इसकी लुगदी बाँधनेसे जल्दी लाभ होता है।

इस अमृत-समान रसके तैयार करनेकी विधि भी उक्त महिला डॉक्टरने विस्तारपूर्वक लिख दी है, ताकि प्रत्येक साधारण मनुष्य भी इसे तैयार करके स्वयं लाभ उठा सके और दूसरे अन्य रोगियोंको भी लाभ पहुँच सके। इस रसको लोग Green Blood की उपमा देते हैं, कहते हैं कि यह रस मनुष्यके रक्तसे ४० फीसदी मेल खाता है। ऐसी अद्भुत चीज आजतक कहीं देखने-सुननेमें नहीं आयी थी। इसके तैयार करनेकी विधि बहुत ही सरल है। प्रत्येक मनुष्य अपने घरमें इसे आसानीसे तैयार कर सकता है। कहीं इसे मोल लेने जाना नहीं पड़ता, न यह कहीं पेटेंट दवाके रूपमें बिकती है। यह तो रोज ताजी बनाकर ताजी ही सेवन करनी पड़ती है

इस रसके बनानेकी विधि इस प्रकार है—

आप १०-१२ चीड़के टूटे-फूटे बक्सोंमें अथवा मिट्टीके गमलोंमें अच्छी मिट्टी भरकर उनमें बारी-बारीसे कुछ उत्तम गेहूँके दाने बो दीजिये और छायामें अथवा

डालते जाइये, धूप न लगे तो अच्छा है। तीन-चार दिन बाद पेड़ उग आयेंगे और आठ-दस दिनके बाद डेढ़ बीता (७-८ इंच)-भरके हो जायँगे, तब आप उनमेंसे पहले दिनके बोये हुए ३०-४० पेड़ जड़सहित उखाड़कर जड़को काटकर फेंक दीजिये और बचे हुए डंठल और पत्तियोंको (जिसे Wheat Grass कहते हैं) धोकर साफ सिलपर थोड़े पानीके साथ पीसकर आधे गिलासके लगभग रस छानकर तैयार कर लीजिये और रोगीको तत्काल वह ताजा रस रोज सबेरे पिला दीजिये। इसी प्रकार शामको भी ताजा रस तैयार करके पिलाइये—बस आप देखेंगे कि भयंकर-से-भयंकर रोग आठ-दस या पन्द्रह-बीस दिन बाद भागने लगेंगे और दो-तीन महीनेमें वह मरणप्राय प्राणी एकदम रोगमुक्त होकर पहलेके समान हट्टा-कट्टा स्वस्थ मनुष्य हो जायगा। रस छाननेमें जो फुजला निकले, उसे भी आप नमक वगैरह डालकर भोजनके साथ खा लें तो बहुत अच्छा है। रस निकालनेके झंझटसे बचा चाहें, तो आप उन पौधोंको चाकूसे महीन-महीन काटकर भोजनके साथ सलादकी तरह भी सेवन कर सकते हैं, परंतु उसके साथ कोई फल न मिलाये जायँ। साग-सब्जी मिलाकर खूब शौकसे खाइये, आप देखियेगा कि इस ईश्वरप्रदत्त अमृतके सामने डाक्टर-वैद्योंकी दवाइयाँ सब बेकार हो जायँगी; ऐसा उस महिला डॉक्टरका दावा है।

गेहूँके पौधे ७-८ इंचसे ज्यादा बड़े न होने पायें, तभी उन्हें काममें लाया जाय। इसी कारण १०-१२ गमले या चीड़के बाक्स रखकर बारी-बारीसे (प्राय: प्रतिदिन दो-एक गमलोंमें) आपको गेहूँके दाने बोने पड़ेंगे। जैसे-जैसे गमले खाली होते जायँ, वैसे-वैसे उनमें गेहूँ बोते चले जाइये। इस प्रकार यह गेहूँ घरमें प्राय: बारहों मास उगाया जा सकता है।

उक्त महिला डॉक्टरने अपनी प्रयोगशालामें हजारों असाध्य रोगियोंपर इस Wheat Grass Juice का प्रयोग किया है और ये कहती हैं कि उनमेंसे किसी एक मामलेमें भी असफलता नहीं हुई।

रस निकालकर ज्यादा देर रखना न चाहिये। ताजा ही सेवन कर लेना चाहिये। घंटा-दो-घंटा रख छोड़नेसे उसकी शक्ति घट जाती है और तीन-चार घंटे बाद तो वह बिल्कुल व्यर्थ ही हो जाता है। डंठल और पत्ते इतनी जल्दी खराब नहीं होते। वे एक-दो दिन हिफाजतसे रखे जायँ तो विशेष हानि नहीं पहुँचती।

इसके साथ-साथ आप एक काम और कर सकते हैं, वह यह कि आप आधा कप गेहूँ लेकर धो लीजिये और किसी बर्तनमें डालकर उसमें दो कप पानी भर दीजिये, बारह घंटे बाद वह पानी निकालकर आप सबेरे-शाम पी लिया कीजिये। वह आपके रोगको निर्मूल करनेमें और अधिक सहायता करेगा। बचे हुए गेहूँ आप नमक-मिर्च डालकर वैसे भी खा सकते हैं अथवा पीसकर हलुआ बनाकर सेवन कर सकते हैं, अथवा सुखाकर आटा पिसवा सकते हैं—सब प्रकारसे लाभ-ही-लाभ है।

ऐसा उपयोगी है, यह रोज काममें आनेवाला गेहूँ। उपर्युक्त अंग्रेजी पुस्तककी लेखिकाने बहुत प्रसन्न मनसे सबको छूट दे रखी है कि संसारमें चाहे जो व्यक्ति इस अमृतका प्रयोग करके लाभ उठाये और लोगोंमें प्रचार करे, जिससे सब लोग सुखी हों।

मालूम होता है हमारे ऋषि-मुनि लोग इस क्रियाको पूर्णरूपसे जानते थे। उन्होंने स्वास्थ्यकी रक्षा करनेवाले पदार्थोंको नित्यके पूजा-विधानमें रख दिया था, जिससे लोग उन्हें भूल न जायँ और नित्य उनका अवश्य प्रयोग करें। जैसे तुलसीदल, बेलपत्र, चन्दन, गंगाजल, गोमूत्र, तिल, मधु, धूप-दीप, रुद्राक्ष वगैरह-वगैरह। इसी प्रकार पूजाओंमें जौका प्रयोग और जौ बोकर उसके पौधे उगाना भी पूजाका एक विधान रखा था, जो प्रथा आजतक किसी-न-किसी रूपमें चली आ रही है। गेहूँ और जौमें बहुत अन्तर नहीं है। बहुत सम्भव है, जौके छोटे-छोटे पौधोंमें जीवनीशक्ति अधिक हो। और सम्भव है, इसीसे पूजामें जौको ही प्रधानता दी गयी हो, परंतु हमलोग इन स्वास्थ्यवर्धक चीजोंको केवल पूजाकी सामग्री समझकर उनका नाममात्रके प्रयोग करते हैं—स्वास्थ्यके विचारसे यथार्थ मात्रामें उनका सेवन करना हम भूल ही गये हैं।

ऐसा है यह गेहूँके पौधोंमें भरा हुआ ईश्वरप्रदत्त अमृत! समर्थ पाठकोंको चाहिये कि वे इस अमृतका सेवनकर स्वयं सुखी हों और लाभ मालूम हो तो परोपकारके विचारसे इसका यथाशक्ति प्रचार करके अन्य लोगोंका कल्याण करें और स्वयं महान् पुण्यके भागी हों।

सन्त-चरित—

अपरिग्रही सन्त स्वामी श्रीप्रकाशानन्दजी

(श्रीभरतजी दीक्षित)

मनुष्य-जीवनमें विषमता, व्याधि-उपाधि, भोग-विलासके अतिरेकके कारण धर्म शिथिल हो जाता है, तब परमात्मा उस संतुलनको बनाये रखनेके लिये कहीं-न-कहीं सन्तरूपसे जन्म लेता है, प्रगट होता है। अर्थात् पतन होते हुए मानव-समुदायके बीच एक मानव अपना सच्चा स्वरूप प्राप्त करके सबको जीवनका सच्चा मूल्य दिखाता है।

ऐसे ही एक परम पुरुषका जन्म संवत् १९२७ (ईस्वी सन १८७१)-में महावदी १३ महाशिवरात्रिके पवित्र दिन शुक्रवार सुबह ७:३० बजे आन्ध्रमें विजयनगरके नजदीक एक गाँवमें एक ब्राह्मण-परिवारमें हुआ। इनकी माताका नाम गौरी तथा पिताका नाम श्रीवेंकट्टरामैया था, वे वेलनाटी ब्राह्मण थे। इनका नाम अनन्तय्य पण्डित रखा गया। भाण्डरूमें इनकी एक बहन रहती थी, उसका नाम रामानुज्जमा था। ८ वर्षकी आयुमें पिता चल बसे। दादा लक्ष्मीनरसिंहमकी छत्रछायामें अनन्तय्य रहने लगे। दादी माँसे इन्हें संस्कार मिले। बचपनमें जरूरतके हिसाबसे अपनी मातृभाषा तेलुगूमें शिक्षा-दीक्षा हुई। दादा थोड़े मरजादी स्वभावके थे, अत: दो-चार किताब अंग्रेजीका शिक्षण घरपर ही हो गया। १५ सालके हुए तो ये पढ़ाई छोड़ दादाके साथ काम-धाममें हाथ बँटाने लगे। उस समय जब अवकाश मिलता तो धार्मिक पुस्तकें, अमरकोश और साथ ही थोड़ी-बहुत ज्योतिषकी भी शिक्षा प्राप्त की।

१८ सालमें माताका स्वर्गवास हुआ। मृत्युके समय माता इन्हींकी चिन्ता कर रही थी, अत: इन्होंने उन्हें 'कपिल भगवान्द्वारा देवहूतिको दिए हुए उपदेश' समझाये। उसके बाद उनकी सगाई हुई। थोड़े ही वक्तमें जिस लड़कीसे इनकी सगाई हुई, वह गुजर गयी। फिरसे उनकी सगाई करनेके लिये दादी माँ प्रयत्नशील थी। उस समय एक घटना घटी, जिससे योगभ्रष्ट अनन्तय्यका जीवन बदल गया। पहलेसे धर्ममय था। इतनेमें उनके जान-पहचानके लश्करके सूबेदारकी युवा पत्नीका देहावसान हुआ। श्मशानमें उसका दहन होते देखकर अनन्तय्यको शारीरिक भौतिक पदार्थोंसे वैराग्य हो गया। आखिर शरीरकी यही दशा होनेवाली है, ये मनमें आया और खुदके शरीरपर भी बहुत ग्लानि उत्पन्न हुई। उन्होंने मन-ही-मन निश्चय किया कि सांसारिक व्यवहारमें पड़ना नहीं है और घरको छोड़कर चले जाना है। कोई ब्रह्मनिष्ठ गुरु मिले तो उसकी शरण ग्रहण करके, इस संसाररूपी जन्म-मरणके चक्करसे मुक्त होना है। उनके गुरु अंग्रेजी भाषाके मास्टर दन्तो पन्तने जब यह बात सुनी तो वे बोले कि सही समय आनेपर आपको गुरुकी प्राप्ति हो जायगी। उनका यह आश्वासन आगे चलकर सत्य हुआ। बेलगाममें १४ जनवरी १८९७ को मकर-संक्रान्तिके दिन वहाँके डिप्टी कलेक्टरसे उनकी मुलाकात हुई। कलेक्टर साहब गृहस्थ होनेके बावजूद भी वैरागी, जीवन्मुक्त पुरुष थे। युव अनन्तय्यने उनको अपना गुरु मान लिया। उनके पास शास्त्र-श्रवण करने जाने लगे। गुरुश्रीने अनन्तय्यकी सारी बात जानते हुए भी उनको संन्यास लेनेकी आज्ञ नहीं दी, पर योगवाशिष्ठ आदि वैराग्यपरक ग्रन्थोंको पढ़ाना शुरू किया और संस्कृत भाषा भी सिखाना शुरू किया। इस दौरान वह घर छोड़कर चले आये, घरके सभी लोग उनको वापस घर लाकर उनकी शादी करनेके प्रयासमें लग गये। उस समय गुरुश्रीने उनको संन्यास लेनेसे मना किया। अभी उन्होंने योगवाशिष्ठक वैराग्य-प्रकरण समाप्त किया था। मुमुक्षु-प्रकरण पूर करनेके पश्चात्, अनन्तय्यको संन्यास लेनेकी तीव्र इच्छा हुई और गुरुश्रीको बिना बताये बालाजी जाकर संन्यस्त होनेका विचार किया।

बालाजी जाते समय गुरुश्रीने बताया कि आज रामचन्द्रजीका राज्याभिषेकका मुहूर्त है और आज ही वह वनवास भी गये थे, उसी तरह प्रसन्न मनसे आप

बालाजी पहुँचकर अनन्तय्यने क्षौर आदि कर्म कराया तथा तीर्थमें स्नान किया एवं मन्त्रका उच्चारण करके शिखासूत्रका त्याग कर दिया और स्वयं भगवे वस्त्र धारण कर लिये। उसके बाद मद्रासकी ओर आकर वापस गुरुश्रीके पास शास्त्र-अध्ययनके लिये आ पहुँचे। गुरुश्रीने गीता इत्यादि उन्हें पढ़ाना शुरू किया। मद्रासमें श्रीबुच्चुय्य पन्तलुके पास जाकर संस्कृत, उपनिषदोंका अध्ययन किया। उस समय उन्होंने माधुकरी करके भिक्षा करनेका आग्रह रखा, लेकिन गुरुश्रीने उनके घरमें भिक्षा करनेका आग्रह किया। गुरु-समागमके अलावा जो अवसर मिलता उस समयमें आप श्रवण, मनन और निदिध्यासन किया करते। इस प्रकार अनन्तय्य आत्माकी उन्नतिके शिखरपर चढ़ने लगे।

स्वामीजीके अमृत-वचन

मनुष्य और शरणागति—मनुष्य अपने प्रयासके द्वारा जो कुछ करता है, वह माया है और बिना प्रयासके जो होता है, वह परम तत्त्वकी कृपा है।

जिस दिन आपको यह निश्चय हो जाय कि मेरे करनेसे कुछ नहीं होता, उस क्षण आपके अन्तरमें जो भाव उठते हैं, वही प्रार्थना है; फिर चाहे आप रामका नाम लो या कृष्णका, कोई फर्क नहीं पड़ता, सब नाम उसीके हैं। नाम लो या ना लो, जब आप मस्तक नवाओगे, वह सिर्फ उनके चरणोंमें ही शरणागति पायेगा और बादमें आप जहाँ बैठे होंगे, वहाँ तीर्थ बन जाता है।

हे प्रभु, जहाँ मैं हूँ, वहाँ ठगोंके सिवा मेरे शरीरमें और कुछ भी नहीं है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, माया, ये सब ठग बैठे हैं। मैं आपको कैसे कहूँ कि आप आओ? किस मुँहसे मैं अपनी पात्रताको सिद्ध कर सकूँ? आपकी करुणापर मुझे भरोसा है, योग्यता मेरी कुछ नहीं है। मैं सब तरहसे अयोग्य हूँ, न तो ज्ञान है, न तो ध्यान है। ये सब चोर हैं मेरे देखो। मैं केवल विनती कर सकता हूँ कि मैं दास हूँ, अधीन हूँ, अच्छा या बुरा—जैसा भी हूँ, मैं आपक हूँ। मेरेमें संयम नहीं है, साधना नहीं है, तीरथ, व्रत, दान नहीं। माँके भरोसे जैसे छोटा बच्चा होता है, वैसे ही आपके भरोसे मैं बैठा हूँ। आप ही कुछ करो बच्चा कितनी भी गलती करे तो माँ उसको माफ कर देती है; क्योंकि वह बच्चेको प्रेम करती है। इसीलिये मेरेपर दया करो। आप स्रोत हो। आपमेंसे हम आये हैं। हमसे बहुत भूल हुई है—यह हम स्वीकार करते हैं। यह हमारी अरज है। मैं जानता हूँ आपकी महिम अपरम्पार है। एक छोटी-सी चिंगारी अगर मेरे अन्तरमे पड़ जाय तो मेरा सारा अन्धकार नष्ट हो जाय। मेरी अनन्त जन्ममें हुई भूल (पाप) जलकर खाक हो जाय, ऐसी कृपाकी एक छोटी-सी चिंगारी मेरे ऊपर डालनेकी कृपा करें।

एक बार आप अपना अहंकार छोड़कर स्वयंको दर्पणमें देखो, तो वही परम तत्त्व दिखायी देगा। आँख बन्द करके अन्तरमें देखोगे, तो वही दिखायी देगा एक बार अहंकार दूर होनेके बाद उसकी ऊर्जा आपकी ऊर्जा बन जाती है। एक बार अहंकार दूर हो तो जीवन आपका पावन हो जाता है।

मृत्यु-समाधि—मृत्यु एक ऐसा मौका है, जो सृजनकी ओर जानेका दरवाजा है। उसीके माध्यमसे दिव्यताकी ओर जरूर आगे बढ़ो। जीवन दिन-जैसा है और मृत्यु रात्रि-जैसी। बिना रात्रिके दिन अपने-आप सम्भावित नहीं है। रात्रि आपको दिनके लिये तैयार करती है। रात्रि फिरसे आपको ऊर्जा प्रदान करती है रात्रि आपको उन केन्द्रोंपर गहनतासे पहुँचाती है, जहाँ आपको मृत्यु ले जायगी। हर रात्रिको आप मृत्युको भेंट होते हो। नींद एक छोटी मृत्यु है। इसी वजहसे आप सुबह उठते ही ताजगीका अनुभव करते हो।

जिन लोगोंकी हर रात्रिको मृत्यु नहीं होती, रातको सोते समय जैसे होते हैं, उठनेपर उससे ज्यादा थके

जाते नहीं हैं, सारी रात कार्यरत रहते हैं और आराम-विराम करके नयी ऊर्जा पाते नहीं हैं। भाग्यवान् तो वे हैं कि जो गहरी नींदमें स्वप्नरहित निद्रा पाते हैं और सुबह ताजगीके साथ उठकर अनेक प्रकार की गतिविधियोंका सामना करनेके लिये तैयार हो जाते हैं।

आनन्द-सागर और प्रतिभावपूर्ण जीवन जो कई चुनौती दे, उसको सहर्ष स्वीकारनेके लिये तत्पर मृत्यु रात्रि-जैसी है। बहुत चीजोंपर विजय पानेका महान् प्रयत्न ही तो मृत्यु है।

जितने आप स्वयंके निकट आते हो सुखी होते हो। जितना आप सुखके बारेमें निश्चिन्त होते हो, ज्यादा सुखी होते हो।

जीवन सुखका आश्वासन देता है, लेकिन वह आश्वासन कभी परिपूर्ण नहीं होता। केवल मृत्यु ही उसको परिपूर्ण करती है। इसलिये मृत्यु शत्रु नहीं, मित्र है। जिस दिनसे आप सुखकी शोध करना बन्द कर दोगे, आप सम्पूर्ण सुखी हो जाओगे।

मृत्यु आपका घर है, जहाँ आप अनन्त यात्राओंके बाद थके-परेशान होकर आश्रयकी शोधमें, विरामकी शोधमें आते हो और नयी ऊर्जा फिरसे पानेके लिये आते हो। यह एक बात हुई।

दूसरी बात जीवनकी क्रिया और मृत्युकी क्रिय दोनों सम्पूर्ण जीवनपर्यन्त साथमें ही सम्भावित होती हैं, जो क्षण आप साँस लेना शुरू करते हो, उसी क्षण आप मृत्यु पानेकी शुरुआत करते हो। हर क्षण जीवन है और हर क्षण मृत्यु है। मृत्यु पानेकी क्रिया और जीवनकी क्रिया साथ-ही-साथ होती है। जीवन और मृत्यु एक साथ होते हैं। हर क्षण दोनों होते हैं, इसलिये भयभीत होनेकी जरूरत नहीं है।

आप शरीरके साथ आत्मीयता ज्यादा रखोगे कि 'मैं शरीर हूँ' तो मुश्किल खड़ी होगी। मनके साथ आत्मीयता रखोगे, तो मुश्किल खड़ी होगी।

एक बार ऐसा हो कि आप किसीसे आत्मीयत न रखो और सिर्फ साक्षी बने रहो। द्रष्टा बने रहो। न तो आप यह कहो कि 'यह मैं हूँ', 'वह मैं हूँ'···सिर्फ साक्षी बने रहो। आप जीवनको व्यतीत होते हुए देखते हो, मृत्युको व्यतीत होते हुए भी देखते हो। आप सफलता-निष्फलता, हताशा सबको जाते हुए देखते हो। आप शुद्ध द्रष्टा बने रहो। मात्र द्रष्टा बने रहो, वही मुक्ति है।

बोध-कथा—

सिद्धियोंका आधार—वाक्-संयम

जब महाभारतका अन्तिम श्लोक महर्षि वेदव्यासके मुखारविन्दसे निःसृत हुआ, गणेशजीके सुडौल सुपाठ्य अक्षरोंमें भूर्जपत्रपर अंकित हो चुका, तब गणेशजीसे महर्षिने कहा—'विघ्नेश्वर! धन्य है आपकी लेखनी, महाभारतका सृजन तो वस्तुतः उसीने किया है; पर एक वस्तु आपकी लेखनीसे भी अधिक विस्मयकारी है, वह है आपका मौन। सुदीर्घ कालतक आपका-हमारा साथ रहा। इस अवधिमें मैंने तो पन्द्रह-बीस लाख शब्द बोल डाले, परंतु आपके मुखसे मैंने एक भी शब्द नहीं सुना।'

इसपर गणेशजीने मौनकी व्याख्या करते हुए कहा—'बादरायण! किसी दीपकमें अधिक तेल होता है, किसीमें कम, परंतु तेलका अक्षय भण्डार किसी दीपकमें नहीं होता। उसी प्रकार देव, मानव, दानव आदि जितने भी तनुधारी हैं, सभीकी प्राण-शक्ति सीमित है; किसीकी कम है, किसीकी कुछ अधिक, परंतु असीम किसीकी नहीं। इस प्राण-शक्तिका पूर्णतम लाभ वही पा सकता है, जो संयमसे उसका उपयोग करता है। संयम ही समस्त सिद्धियोंका आधार है और संयमका प्रथम सोपान है—'वचोगुप्ति' अर्थात् वाक्-संयम। जो वाणीपर संयम नहीं रखता, उसकी जिह्वा बोलती रहती है। बहुत बोलनेवाली जिह्वा अनावश्यक बोलती है और अनावश्यक शब्द प्रायः विग्रह और वैमनस्य पैदा करता है, जो हमारी प्राण-शक्तिको सोख डालते हैं। वचोगुप्तिसे यह समस्त अनर्थ-परम्परा दग्धबीज हो जाती है। इसीलिये मैं मौनका उपासक हूँ।'

गो-चिन्तन—

चरक-संहितामें गोघृतकी चिकित्सकीय उपयोगिता

(प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़)

गोघृत वातपित्तनाशक; रस, शुक्र एवं ओजस्‌को बढ़ानेवाला अर्थात् इनके लिये हितकर, दाहशामक, शरीरमें मृदुता उत्पन्न करनेवाला तथा स्वर और वर्णका प्रसादन करनेवाला होता है।

घृतं पित्तानिलहरं रसशुक्रौजसां हितम्।
निर्वापणं मृदुकरं स्वरवर्णप्रसादनम्॥

(चरक-सूत्र १३। १४)

चरक-संहितामें गोघृतको सब घृतोंमें-से हितकर कहा गया है।

'गव्यं सर्पिः सर्पिषां' (चरक-सूत्र २५। ३८)

घृत शरीरका स्नेहन करता है।

'सर्पिः स्नेहयति' (चरक-सूत्र २७। ४)

गोदुग्ध और गोघृतका नित्य प्रयोग रसायनका लाभ करता है, अर्थात् इसके सेवनसे व्यक्तिको अकाल वृद्धावस्था नहीं आती।

'क्षीरघृताभ्यासो रसायनानां'

गोघृत स्मृति, बुद्धि, जठराग्नि, शुक्र, ओज, कफ एवं मेदका वर्धक है। यह वात, पित्त, विष-विकार, उन्माद, शोष, दरिद्रता एवं ज्वरका नाशक है। घृत सभी स्नेहोंमें उत्तम होता है। विभिन्न प्रकारके द्रव्योंसे इसका विधिपूर्वक संस्कार करनेपर यह हजार वीर्यवाला हो जाता है, जिससे यह हजार प्रकारके कर्मोंको करता है।

स्मृतिबुद्ध्यग्निशुक्रौजःकफमेदोविवर्धनम् ।
वातपित्तविषोन्मादशोषालक्ष्मीज्वरापहम् ॥
सर्वस्नेहोत्तमं शीतं मधुरं रसपाकयोः।
सहस्रवीर्यं विधिभिर्घृतं कर्मसहस्रकृत्॥

(चरक-सूत्र २७। २३१-२३२)

मद और मूर्च्छा रोगकी चिकित्सामें कौम्भ घृत अर्थात् दस वर्ष पुराने घृतका प्रयोग निर्दिष्ट है।

रसायनानां कौम्भस्य सर्पिषो वा प्रशस्यते।

(चरक-सूत्र २४। ५५)

दधिका प्रयोग करते समय उसमें घृत मिलाकर प्रयोग करनेका निर्देश है। उन्माद रोगकी चिकित्सामें लिये घृतसेवनका निर्देश है।

प्रयोक्तव्यं मनोबुद्धिस्मृतिसञ्ज्ञाप्रबोधनम्।
सर्पिःपानादिरागन्तोर्मन्त्रादिश्चेष्यते विधिः॥

(चरक-चिकित्सा ९। ३३)

आगन्तुज उन्मादकी चिकित्सामें मन्त्र, मणि, बलि तथा पूजा आदिके साथ-साथ घृतपान करानेका भी निर्देश है।

इसमें पुराण घृतका अलग महत्त्व है। पुराना घृत त्रिदोषनाशक होनेके कारण तथा अत्यन्त पवित्र होनेके कारण देवादिग्रहका नाशक होता है और उन्माद रोगमें विशेष रूपसे हितकर होता है। पुराण घृत कटु और तिक्त होता है और यह अधिक गुणकारी होता है।

विशेषतः पुराणं च घृतं तं पाययेद्भिषक्।
त्रिदोषघ्नं पवित्रत्वाद्विशेषाद्ग्रहनाशनम्॥
गुणकर्माधिकं पानादास्वादात् कटुतिक्तकम्।

(चरक-चिकित्सा ९। ५९)

उन्मादके रोगीको घृतका भर पेट पान करवाकर तेज हवासे रहित घरमें सुखपूर्वक शयन कराना चाहिये।

राजयक्ष्माके रोगमें रोगीको भोजनके बाद अधिक मात्रामें कुछ दिन लगातार घृतपान करवानेसे शिरःशूल, पार्श्वशूल, अंसशूल, कास तथा श्वास रोग नष्ट होते हैं।

शिरःपार्श्वांसशूलघ्नं कासश्वासनिबर्हणम्।
प्रयुज्यमानं बहुशो घृतं चौत्तरभक्तिकम्॥

(चरक-चिकित्सा ८। ९२)

जीर्ण घृत मद, अपस्मार, मूर्च्छा, शोष, विष, ज्वर, योनिशूल, कर्णशूल एवं शिरःशूल-जैसी व्याधियोंको दूर करता है।

मदापस्मारमूर्च्छायशोषोन्मादगरज्वरान् ।
योनिकर्णशिरःशूलं घृतं जीर्णमपोहति॥

(चरक-सूत्र २७। २३३)

जीर्ण ज्वरमें घृतका प्रयोग ज्वरको इस तरह शान्त करता है, जिस तरह जल अग्निको बुझानेका काम करता है। घृत अपने स्नेहगुणके कारण वातका शमन करता है,

कफका शमन संस्कारसे करता है। ऐसा कोई भी स्नेह नहीं है, जो घृतके समान संस्कारका अनुवर्तन करता हो। इसलिये सभी प्रकारके स्नेहोंमें घृत सबसे श्रेष्ठ है।

यथा प्रज्वलितं वेश्म परिषिञ्चन्ति वारिणा।
नराः शान्तिमभिप्रेत्य तथा जीर्णज्वरे घृतम्॥
स्नेहाद्घातं शमयति शैत्यात् पित्तं नियच्छति।
घृतं तुल्यगुणं दोषं संस्कारात्तु जयेत् कफम्॥
नान्यः स्नेहस्तथा कश्चित् संस्कारमनुवर्तते।
यथा सर्पिरतः सर्पिः सर्वस्नेहोत्तमं मतम्॥

(चरक-निदान १। ३८—४०)

क्षतज कासमें पीड़ित रोगीके स्रोतोंसे या मुखसे रक्त निकलता हो, तो दूधसे निकाले गये घृतका नस्य या पान करवाना चाहिये। ऐसी अवस्थामें शरीरमें जकड़ाहट हो और आयाम हो, तो घृतका बहुत मात्रामें सेवन करवाना चाहिये।

रक्ते स्रोतोभ्य अस्याद्वाप्यागते क्षीरजं घृतम्।
नस्यं पानं यवागूर्वा श्रान्ते क्षामे हतानले॥
स्तम्भायामेषु महतीं मात्रां वा सर्पिषः पिबेत्।

(चरक-चिकित्सा १८। १४२)

हिक्का और श्वासरोगके उपद्रवस्वरूप छाती, कण्ठ और तालुमें यदि शुष्कता आ गयी हो अथवा जो रोगी स्वभावसे ही रुक्ष शरीरवाले होते हैं, उनकी चिकित्सा घृतके द्वारा करनी चाहिये।

शुक्रका क्षय होनेपर क्षीर और घृतका प्रयोग करना चाहिये।

शुक्रक्षये क्षीरसर्पिषोरुपयोगो।

(चरक-शारीर ६। ११)

गर्भावस्थाके तीसरे मासमें मधुके साथ तथा पाँचवें मासमें दूधके साथ घृतपान कराना चाहिये। आठवें मास गर्भिणीको क्षीर यवागूमिश्रित घृतका प्रयोग समय-समयपर कराना चाहिये। इससे गर्भिणी स्वयं रोगरहित होकर उत्तम आरोग्य, स्वर, बल, वर्ण, संहननयुक्त सन्तान उत्पन्न करती है।

बच्चेके पैदा होनेपर जातकर्म-संस्कार करते समय शिशुको मन्त्रोंसे मधु और घृतको अभिमन्त्रित करते हुए उसको चाटनेके लिये देना चाहिये।

संशोधनके अतियोग होनेपर घृतपान कराना हितकर होता है।

अतियोगानुबद्धानां सर्पिःपानं प्रशस्यते।

(चरक-सूत्र १६। २४)

शरद् ऋतुमें स्वभावसे ही पित्तका प्रकोप होता है, अतः इस कालमें तिक्त घृतपान करना चाहिये।

तिक्तस्य सर्पिषः पानं विरेको रक्तमोक्षणम्।

(चरक-सूत्र ६। ४४)

घृत न केवल आहारके रूपमें अपितु औषधके रूपमें भी न केवल स्वास्थ्यका संवर्धन करता है, अपितु रोगोंका प्रतिकार भी करता है।

बोध-कथा—

आश्रम पहले ही बन गया

एक राजा उस महात्माका शिष्य बनना चाहता था, जिसका आश्रम सबसे बड़ा हो। राजा भूमि तो मुफ्त देते थे, पर आश्रम बनानेकी जिम्मेदारी महात्माओंपर ही छोड़ते थे।

राजगुरु बननेके लोभसे प्रेरित कितने ही महात्मा आये और दूसरोंकी तुलनामें बड़ा आश्रम बनानेकी प्रतिस्पर्धामें लग गये।

कुछ समय बाद राजा उन आश्रमोंकी प्रगति देखने निकले। विस्तारमें एक-दूसरेसे बढ़-चढ़कर तैयारी कर रहे थे। राजाने कौतूहलपूर्वक उन सबका क्रिया-कलाप देखा।

एक महात्मा ऐसे भी मिले, जिनकी गणना आश्रम बनानेवालोंमें तो थी, पर एक पेड़के नीचे निश्चिन्त चादर पसारकर सो रहे थे।

राजाने आश्चर्यसे पूछा, 'आपका आश्रम निर्माण-कार्य अभीतक क्यों आरम्भ नहीं हुआ?'

सन्तने कहा—'मेरा आश्रम बहुत पहले ही बनकर तैयार हो गया। यह सारा संसार अपना ही आश्रम है, दीवारें खींचकर उसकी विशालताको घटाऊँ क्यों?' राजाका मस्तक श्रद्धासे गुरुके प्रति नत हो गया।

जिसको 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अनुभूति होती है, वही सच्चा उपदेशक, गुरु और सन्त कहला सकता है।

सुभाषित-त्रिवेणी

पाप और पुण्यका परिणाम

[Result of Evil Deeds and Virtuous Tasks]

पापं कुर्वन् पापकीर्तिः पापमेवाश्नुते फलम्।
पुण्यं कुर्वन् पुण्यकीर्तिः पुण्यमत्यन्तमश्नुते॥

पापकीर्तिवाला मनुष्य पापाचरण करता हुआ पापरूप फलको ही प्राप्त करता है और पुण्यकर्मा मनुष्य पुण्य करता हुआ अत्यन्त पुण्यफलका ही उपभोग करता है।

"A notorious person indulging in evil deeds begets nothing but sin. On the contrary, a noble person performing virtuous tasks is blessed with a deserving reward.

तस्मात् पापं न कुर्वीत पुरुषः शंसितव्रतः।
पापं प्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुनः पुनः॥

इसलिये प्रशंसित व्रतका आचरण करनेवाले पुरुषको पाप नहीं करना चाहिये; क्योंकि बारम्बार किया हुआ पाप बुद्धिको नष्ट कर देता है।

"Hence a person known and praised for his good deeds must never commit a sin. Sinful deeds repeatedly indulged in, destroy one's discretion and wisdom.

नष्टप्रज्ञः पापमेव नित्यमारभते नरः।
पुण्यं प्रज्ञां वर्धयति क्रियमाणं पुनः पुनः॥

जिसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, वह मनुष्य सदा पाप ही करता रहता है। इसी प्रकार बारम्बार किया हुआ पुण्य बुद्धिको बढ़ाता है।

"His wisdom destroyed, a person repeatedly commits sin. Likewise, a virtuous deed performed again and again, makes a person wiser.

वृद्धप्रज्ञः पुण्यमेव नित्यमारभते नरः।
पुण्यं कुर्वन् पुण्यकीर्तिः पुण्यं स्थानं स्म गच्छति।
तस्मात् पुण्यं निषेवेत पुरुषः सुसमाहितः॥

जिसकी बुद्धि बढ़ जाती है, वह मनुष्य सदा पुण्य ही करता है। इस प्रकार पुण्यकर्मा मनुष्य पुण्य करता हुआ पुण्यलोकको ही जाता है। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह सदा एकाग्रचित्त होकर पुण्यका ही सेवन करे।

"Growing wiser, a man always performs virtuous deeds. Such a person transcends to Heaven. That is why a man ought always to wholeheartedly perform good deeds.

असूयको दन्दशूको निष्ठुरो वैरकृच्छठः।
स कृच्छ्रं महदाप्नोति न चिरात् पापमाचरन्॥

गुणोंमें दोष देखनेवाला, मर्मपर आघात करनेवाला, निर्दयी, शत्रुता करनेवाला और शठ मनुष्य पापका आचरण करता हुआ शीघ्र ही महान् कष्टको प्राप्त होता है।

"A person who is always finding faults with others, who is cruel, who rubs salt into other's wounds, who always acts inimical, and who is wicked, soon suffers grievously because he is indulging in sinful deeds.

अनसूयुः कृतप्रज्ञः शोभनान्याचरन् सदा।
न कृच्छ्रं महदाप्नोति सर्वत्र च विरोचते॥

दोषदृष्टिसे रहित शुद्ध बुद्धिवाला पुरुष सदा शुभकर्मोंका अनुष्ठान करता हुआ महान् सुखको प्राप्त होता है और सर्वत्र उसका सम्मान होता है।

On the contrary, a person with a positive attitude and who is not seeking to find fault with others, is always occupied with noble deeds. He attains happiness and is respected all around.

[विदुर-नीति ३।६०—६५]

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०८०, शक १९४५, सन् २०२३, सूर्य-उत्तरायण, वसन्त-ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ९।५५ बजेतक	शनि	विशाखा रात्रिमें ९।२९ बजेतक	६ मई	**वृश्चिकराशि** दिनमें ३। २९ बजेसे।
द्वितीया ,, ८।४४ बजेतक	रवि	अनुराधा ,, ९।० बजेतक	७ ,,	**मूल** रात्रिमें ९।० बजेसे।
तृतीया ,, ७।८ बजेतक	सोम	ज्येष्ठा ,, ८।११ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** प्रात: ७।५५ बजेसे रात्रि ७।८ बजेतक, **धनुराशि** रात्रिमें ८।११ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९। ३० बजे।
चतुर्थी सायं ५।१३ बजेतक	मंगल	मूल रात्रिमें ७।० बजेतक	९ ,,	**मूल** रात्रिमें ७।० बजेतक।
पंचमी दिनमें ३।३ बजेतक	बुध	पू०षा० सायं ५।३६ बजेतक	१० ,,	**मकरराशि** रात्रिमें ११।१२ बजेसे।
षष्ठी ,, १२।४३ बजेतक	गुरु	उ०षा० दिनमें ४।१ बजेतक	११ ,,	**भद्रा** दिनमें १२।४३ बजेसे रात्रिमें ११।३० बजेतक, **कृत्तिकाका सूर्य** रात्रिशेष ४। १९ बजे।
सप्तमी ,, १०।१७ बजेतक	शुक्र	श्रवण ,, २।२२ बजेतक	१२ ,,	**कुम्भराशि** रात्रि १। ३२ बजे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें १। ३२ बजे।
अष्टमी ,, ७।४९ बजेतक	शनि	धनिष्ठा ,, १२।४२ बजेतक	१३ ,,	× × × × ×
नवमी प्रात: ५।२६ बजेतक	रवि	शतभिषा ,, ११।७ बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** सायं ४।१८ बजेसे रात्रिमें ३।१० बजेतक, **मीनराशि** रात्रिशेष ४।४ बजेसे।
एकादशी रात्रिमें १।७ बजेतक	सोम	पू०भा० ,, ९।४२ बजेतक	१५ ,,	**अचला एकादशीव्रत (स्मार्त्त), वृष-संक्रान्ति** दिनमें ३। २७ बजे, **ग्रीष्म-ऋतु प्रारम्भ।**
द्वादशी ,, ११।२४ बजेतक	मंगल	उ०भा० ,, ८।३१ बजेतक	१६ ,,	**एकादशीव्रत (वैष्णव)।**
त्रयोदशी ,, ९।५९ बजेतक	बुध	रेवती ,, ७।४२ बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ९।५९ बजेसे, **मेषराशि** दिनमें ७।४२ बजे, **पंचक समाप्त** दिनमें ७। ४२ बजे, **प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, ९।२ बजेतक	गुरु	अश्विनी प्रात: ७।१२ बजेतक	१८ ,,	**भद्रा** दिनमें ९। ३० बजेतक।
अमावस्या रात्रिमें ८। ३२ बजेतक	शुक्र	भरणी प्रात: ७।९ बजेतक	१९ ,,	**वृषराशि** दिनमें १। १५ बजेसे, **अमावस्या वटसावित्री-व्रत।**

सं० २०८०, शक १९४५, सन् २०२३, सूर्य उत्तरायण, ग्रीष्म-ऋतु, ज्येष्ठ-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ८।३३ बजेतक	शनि	कृत्तिका दिनमें७।३५ बजेतक	२० मई	× × × × ×
द्वितीया ,, ९। ६ बजेतक	रवि	रोहिणी ,, ८।३१ बजेतक	२१ ,,	**मिथुनराशि** रात्रिमें ९। १५ बजेसे, **सायन मिथुनराशिका सूर्य** सायं ४। २२ बजे।
तृतीया ,, १०।६ बजेतक	सोम	मृगशिरा ,, ९।५९ बजेतक	२२ ,,	× × × × ×
चतुर्थी ,, ११।३४ बजेतक	मंगल	आर्द्रा ,, ११।५२ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** दिनमें १०। ४९ बजेसे, रात्रिमें ११। ३३ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, १। २१ बजेतक	बुध	पुनर्वसु ,, २।८ बजेतक	२४ ,,	**कर्कराशि** प्रात: ७। ३४ बजेसे।
षष्ठी ,, ३। २२ बजेतक	गुरु	पुष्य सायं ४। ३८ बजेतक	२५ ,,	**रोहिणीका सूर्य** रात्रिमें १। ४२ बजे। **मूल** सायं ४। ३८ बजेसे।
सप्तमी अहोरात्र	शुक्र	आश्लेषा रात्रिमें७।१७ बजेतक	२६ ,,	**सिंहराशि** रात्रिमें ७। १७ बजेसे।
सप्तमी प्रात: ५।२३ बजेतक	शनि	मघा ,, ९।५० बजेतक	२७ ,,	**मूल** रात्रिमें ९।५० बजेतक, **भद्रा** प्रात: ५। २३ बजेसे सायं ६। २१ बजेतक।
अष्टमी दिनमें७।१८ बजेतक	रवि	पू०फा० ,, १२।११ बजेतक	२८ ,,	× × × × ×
नवमी ,, ८।५५ बजेतक	सोम	उ०फा० ,, २।११ बजेतक	२९ ,,	**कन्याराशि** प्रात: ६। ४१ बजेसे।
दशमी ,, १०।७ बजेतक	मंगल	हस्त ,, ३।४३ बजेतक	३० ,,	**भद्रा** रात्रिमें १०। ३१ बजेसे, **श्रीगंगादशहरा।**
एकादशी ,, १०।५४ बजेतक	बुध	चित्रा रात्रिशेष ४।४८ बजेतक	३१ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।५४ बजेतक, **तुलाराशि** दिनमें ४।१६ बजेसे, **निर्जला एकादशीव्रत (भीमसेनी)-व्रत** (सबका)।
द्वादशी ,, ११।९ बजेतक	गुरु	स्वाती अहोरात्र	१ जून	**प्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, १०।५१ बजेतक	शुक्र	स्वाती प्रात: ५।२३ बजेतक	२ ,,	**वृश्चिकराशि** रात्रिमें ११। २६ बजेसे।
चतुर्दशी ,, १०। ६ बजेतक	शनि	विशाखा प्रात: ५।२७ बजेतक	३ ,,	**भद्रा** दिनमें १०। ६ बजेसे रात्रिमें ९। ३० बजेतक, **व्रतपूर्णिमा, मूल** रात्रिशेष ५। ४ बजेसे।

कृपानुभूति

हनुमान्‌जीकी कृपा

(१)

मैं फरीदाबादकी एक कम्पनीमें कार्यरत हूँ। इसी कम्पनीकी ओरसे मुझे नयी कम्पनी लगानेके लिये बद्दी (हिमाचल प्रदेश), जो कि चण्डीगढ़के पास है, भेजा गया। सब कुछ ठीक प्रकारसे चल रहा था कि अचानक ससुराल, जो कि शिमलासे १०० कि०मी० दूर ग्राम—भुट्टी, कोटगढ़में है, समाचार आया कि हमारे ससुर साहबके घनिष्ठ मित्र जिनसे कि हमारे भी अच्छे सम्बन्ध थे, उनका एक दुर्घटनामें देहान्त हो गया है। ये घटना १७ मई २०१० ई० की है। मनमें विचार आया कि अन्त्येष्टिमें जाना चाहिये। इस सम्बन्धमें ससुरजीसे बात की तो उन्होंने कहा कि संस्कार कल होगा, यदि आप आ सकते हो तो आ जाओ, मनमें जानेका विचार बनाकर अपने एक साथीको साथ लेकर अगले दिन भगवन्नामस्मरण करते हुए हम सुबह ५ बजे गाँवके लिये निकल गये।

गाँव पहुँचकर अन्त्येष्टि हो जानेके बाद नहा-धोकर खाना इत्यादि खाकर हम वापस चल पड़े। शिमला पहुँचते-पहुँचते चूँकि हमें शाम हो गयी थी एवं पहाड़पर गाड़ी चलाकर मैं थक चुका था, अत: रात्रि-विश्राम करनेके लिये शिमला रुक गये और अगले दिन १९ मई २०१० ई० को सुबह ५ बजे उठकर वापस चलनेसे पहले अपने इष्ट हनुमान्‌जीका स्मरण किया और वापसीका सफर शुरू किया। जैसे ही हम शिमलासे बाहर निकले सब कुछ ठीक था, मैं मन-ही-मन हनुमानाष्टकका पाठ कर रहा था कि एक तीव्र मोड़पर गाड़ी अनियन्त्रित होकर खाईकी तरफ बढ़ गयी। जबतक मैं और मेरा मित्र कुछ समझ पाते मैंने गाड़ीकी ब्रेक पूरी तरहसे दबा दी और गाड़ी ३६०° घूमकर खाईके किनारेपर जाकर रुक गयी; कारका पिछला टायर फट गया था। यह असम्भव-सी बात थी।

गाड़ी जैसे ही रुकी, हमारी जानमें जान आयी। हमने गाड़ीमें ही लगी हुई आशीर्वादकी मुद्रामें हनुमान्‌जीकी फोटोको प्रणाम किया और लगा कि जैसे हनुमान्‌जी कह रहे हों कि चिन्ता मत करो, सब ठीक है।

(२)

बात सन् १९७६ ई० की है। जयप्रकाश-आन्दोलनमें हर वर्गके नौजवान भाग ले रहे थे तथा तन-मन-धनसे जयप्रकाश नारायणके आन्दोलनको सफल बनाना चाहते थे। मैं भी आई०एस-सी० का छात्र था। मैंने भी आन्दोलनमें बढ़-चढ़कर भाग लिया। इसी सन्दर्भमें हम ३० व्यक्तियोंको गिरफ्तारकर जेल भेज दिया गया आन्दोलन उग्र-से-उग्रतर होता जा रहा था। मेरे परिवारमें बूढ़े पिताजी, माताजी एवं बड़ी बहन थी। मेरे जेल जानेसे सारा परिवार सन्तप्त हो गया। कभी कोई जेल गया नहीं था तथा परिवारका मैं इकलौता पुत्र था। पिताजी बहुत घबड़ा गये थे।

उनका श्रद्धा-विश्वास श्रीहनुमान्‌जीके चरणोंमें बहुत अधिक था। वे प्रत्येक मंगलवारके दिन घरके पासके एक हनुमान्‌जीके मन्दिर जाया करते थे। उस दिन भी उसी मन्दिरमें जाकर हनुमान्‌जीकी मूर्तिके सामने अपने इस संकटके मोचनके लिये कातर भावसे प्रार्थना करने लगे भजन-कीर्तनके पश्चात् बूढ़े पुजारीने उन्हें मन्दिरकी चौखटपर बुलाया और कहा कि जा तेरा पुत्र कल शामतक घर आ जायगा।

पिताजी माथा टेककर प्रसाद लेकर घर चले आये, लेकिन इस उग्र आन्दोलनमें कल शामतक वापस आना असम्भव-सा लगता था। दूसरे दिन मन्दिरमें प्रणामकर जमानतके लिये कोर्ट जाकर जमानत फाइल कर दी गयी वहाँपर भी पिताजीका मन-ही-मन जप चल रहा था।

प्रभुकृपासे जमानत मंजूर हो गयी। सारी प्रक्रिया पूरी करनेमें आर्डर जेल गेटपर विलम्बसे पहुँचा। लेट आवरमें कैदीको छोड़नेमें कठिनाई थी, लेकिन हनुमान्‌जीकी कृपासे जेलर महोदयसे प्रार्थना करनेपर उसी समय कागज लेकर मुझे छोड़नेका आदेश दे दिया।

उनकी महिमाका चमत्कार देखिये कि मेरे जेलसे रिलीज होते ही कोर्टसे दूसरा आदेश आया कि जितने भी आन्दोलनकारी कैदी हैं, उन्हें जेलमें ही रहने देनेकी

पढ़ो, समझो और करो

(१)

सावधान चोर आपके पीछे है

दिनांक २० अप्रैल २०१५ से २५ अप्रैल २०१५ तक मैं दिल्लीमें सरकारी कार्यहेतु प्रवासपर था। मुझे माननीय उच्चतम न्यायालयमें भोपालसे दिल्ली एस०एल०पी० दायर करवानेके लिये जाना पड़ा। दिल्लीमें विभागीय गेस्ट हाउस मिलना बड़ा ही मुश्किल होता है; क्योंकि गेस्ट हाउसकी संख्या कम एवं सम्पूर्ण भारतसे अधिकारियोंका आगमन अधिकतम होता है। फिर भी मेरे मित्रने प्रयास करके कश्मीरी गेटस्थित गेस्ट हाउस मेरे लिये आरक्षित करवा दिया था। मित्रने इस एरियाके बारेमें भी मुझे पूर्वमें ही अवगत करा दिया था कि यह एरिया सुरक्षाकी दृष्टिसे ठीक नहीं है। बसोंमें चोर-उचक्के बहुतायतमें सफर करते हैं। अधिकांश लोगोंकी जेब यहीं काट दी जाती है, अत: बसमें यात्रा करते समय चौकन्ने रहना और यदि बससे यात्रा करना ही हो तो ए०सी० बससे यात्रा करना।

मेरे साथ एक और अधिकारी थे। मैंने उन्हें भी इन हालातोंसे अवगत कराया था कि यहाँ जेबकतरे बहुतायतमें यात्रा करते हैं, अत: बसमें यात्रा करना हो, तो सावधान रहना। दिनांक २१ अप्रैलको वरिष्ठ अधिवक्तासे पटियाला हाउसमें कांफ्रेन्स थी। अत: हमलोग जी०पी०ओ० कश्मीरी गेटसे पटियाला हाउस ऑटोसे गये। दिनांक २२ अप्रैलको वरिष्ठ अधिवक्ता महोदय उच्चतम न्यायालयमें दिनभर व्यस्त रहे, अत: समय नहीं दे पाये एवं दिनांक २३ अप्रैलको उन्होंने अपने नोएडास्थित निवासपर मिलनेके लिये बुलाया।

दिनांक २३ अप्रैलको हमने नोएडाकी यात्रा मैट्रोद्वारा करनेका निश्चय किया। जी०पी०ओ० कश्मीरी गेटसे कश्मीरी गेट मैट्रो स्टेशनकी दूरी बससे मात्र एक कदमकी दूरीपर ही बस-स्टॉप था। सुबहके दस ही बजे थे। सड़कपर भीड़-भाड़ कम थी। बस-स्टॉपपर खड़े ही हुए थे कि एक खाली बस आयी। चूँकि बस खाली थी, बमुश्किल उसमें १०-१५ सवारी ही थी। हम दोनों बड़ी ही आसानीसे उस बसमें सवार हो लिये। साथी अधिकारी बस कण्डक्टरके पास जाकर अगले बस-स्टॉपका टिकिट लेने लगे। बस चलते ही बसके दरवाजे स्वत: ही बन्द हो गये। मैं आगे बढ़कर खाली सीटपर बैठनेके लिये उद्यत हुआ।

घटना यहाँसे शुरू होती है। मैं जैसे ही सीटपर बैठनेके लिये आगे बढ़ने लगा। एक युवक मेरे सामने रास्ता रोककर खड़ा हो गया और मुझे आगे बढ़नेसे रोकता हुआ पीछेकी ओर धकेलने लगा। मैंने कहा कि भाई! सामनेसे हटो, आगे सीट खाली है, मुझे आगे जाने दो। तो वह बड़े ही सामान्य व्यवहारसे मुसकराते हुए कहता है कि 'अंकल! टिकिट तो ले लेने दो।' मैंने उसके इस व्यवहारको सामान्य समझा और थोड़ा पीछे हुआ। उसी समय मुझे तीन युवकोंने तीन तरफसे धक्का दिया। जैसे ही मुझे धक्केका एहसास हुआ। मैंने तुरन्त अपने पीछेवाली जेबको टटोला। जेबमें पर्स था, क्योंकि जेबकी बटन लगी हुई थी। पर्स उसमेंसे निकालना आसान नहीं था। लेकिन जैसे ही मैंने दूसरे हाथसे सामनेकी जेबमें रखे मोबाइलको टटोला, मैं सन्न रह गया। जेब खाली थी। तीनों युवक मेरेसे दूर हो गये। लो-फ्लोर बस थी, चलते ही दरवाजे बन्द हो जाते हैं। युवकोंको उतरनेका मौका नहीं मिला। मैंने तुरन्त पीछेवाले युवकको कहा कि तुमने मेरा मोबाइल निकाल लिया है, वापस करो। वह युवक चुप रहा। उसके साथीने सफायी दी कि 'अभी-अभी एक लड़का बससे उतरा है, वही आपका मोबाइल लेकर भागा होगा।' मैंने

सामनेवाले युवक जो मेरे पीछे खड़ा था, उसने ही निकाला है एवं अपने साथीको दिया है। मेरा मोबाइल वापस कर दो। युवककी तरफसे कोई जवाब नहीं आया। मैंने जोरसे चिल्लाकर कण्डक्टरको कहा कि 'कण्डक्टर! बसको सीधे थाने ले चलो। इन लोगोंने मेरा मोबाइल निकाल लिया है और वापस नहीं दे रहे हैं।' इतना सुनते ही युवकोंमेंसे एक युवकने काले रंगका एक स्मार्ट फोन मुझे दिखाया कि 'क्या ये है?' मैंने कहा, 'नहीं'। मेरा मोबाइल डबल सिमवाला काले रंगका है। इतनेमें ही एक युवक कण्डक्टरके पास पहुँचा और उसे जोर-जोरसे भद्दी गालियाँ देने लगा। मैंने उन युवकोंसे कहा कि 'देखो, मैं बाहरसे आया हूँ और उस मोबाइलमें मेरे सारे नम्बर फीड हैं। मेरा मोबाइल वापस करो।' मैंने पुनः कण्डक्टरको जोरसे चिल्लाकर कहा कि 'बसको सीधे थाने ले चलो, ये लोग मेरा मोबाइल वापस नहीं कर रहे हैं और मेरा मोबाइल इन्हींके पास है।' यह सुनकर एक युवक नीचेकी ओर झुका और इस प्रकार एक्टिंग की कि वह मोबाइल फर्शसे उठा रहा है और मुझे मेरा मोबाइल दिखाते हुए बोला कि 'अरे अंकल! यह मोबाइल कहीं आपका तो नहीं है।' मैंने तुरंत मोबाइल अपने हाथमें लेकर देखा और कहा कि 'हाँ, यही मेरा मोबाइल है।' मोबाइल लेकर मैं आगेकी सीटपर बैठा ही था कि अगला बस-स्टॉप आ गया। बस खड़ी हुई और मैं अपने मित्रके साथ बससे नीचे उतर गया।

उपर्युक्त घटना सत्य है एवं इस आधारपर हमें यह सीख लेनी चाहिये कि—

१-कभी भी भरी बस या मैट्रोमें जहाँ धक्का-मुक्कीकी सम्भावना हो, यात्रा टालनी चाहिये।

२-यदि नहीं टाल सकते तो यात्रामें सदैव चौकन्ने रहें, अपनी जेब टटोलते रहें।

३-यदि धक्का-मुक्कीमें कोई आपका पर्स निकाल ले, तो तत्काल आस-पड़ोसमें खड़े व्यक्तियोंसे पूछ-

४-यदि वे सहयोग नहीं करें, तो जोरसे चिल्लाएँ कि मेरा मोबाइल अथवा पर्स इन लोगोंने निकाल लिया है।

५-यदि आपका कोई साथी साथ हो, तो उससे कहें कि आपके मोबाइलपर तत्काल घण्टी करे, ताकि आपको मालूम हो जाय कि आपका मोबाइल कहाँ और किसके पास है।

६-कण्डक्टरको जोरसे कहें कि मेरा मोबाइल या पर्स चोरी हो गया है, बसको तत्काल पासके थानेमें ले चलें, रास्तेमें कहीं नहीं रोकें।

दूसरे शहरमें मोबाइल अत्यन्त आवश्यक सहायकके रूपमें कार्य करता है। इसके द्वारा आप सभीसे हमेशा जुड़े रहते हैं, अतः मोबाइलपर विशेष ध्यान रखें। यदि सम्भव हो तो इसे जेबके स्थानपर बैगमें सुरक्षित रखिये और उसपर सतत निगाह रखिये; क्योंकि इसके चोरी हो जानेपर आप दूसरे शहरमें सहायताविहीन हो सकते हैं।

—डॉ० हरिशरण सक्सेना

(२)

एक कुतियाका भगवत्कथा-प्रेम

भगवान्‌की लीला-कथाके श्रवणमें उनके भक्तोंको तो बहुत रस आता ही है, लेकिन अगर मानवसे इतर किसी अन्य प्राणीमें भी लगभग वैसा ही भाव देखनेको मिले तो यह एक अति असामान्य बात होती है। नवम्बर २०२२ में हुई हमारी एक तीर्थयात्रामें हमें ऐसा ही एक अविश्वसनीय दृश्य देखनेको मिला। घटना इस प्रकार है—

उस समय हम आठ लोग वाराणसीकी भव्य देव दीपावली और सुप्रसिद्ध काशीविश्वनाथ आदि मन्दिरोंके दर्शन-पूजनके बाद श्रीअयोध्याजीमें रामललाके दर्शनकर नैमिषारण्यतीर्थ पहुँचे थे। सिर्फ चार घंटोंके उपलब्ध समयमें वहाँ पवित्र गोमती नदी, विभिन्न आश्रमों और प्राचीन मन्दिरोंके दर्शनकर अन्तमें हम वहाँके श्रीराम-जानकी-मन्दिर पहुँचे। मन्दिरके प्रांगणमें भगवत्कथा चल रही थी। दर्शनके अन्तमें जब हम सभी मन्दिरके

रंगकी कुतिया शान्त रूपमें बैठी थी। वहींके एक सज्जन अपने पैरोंसे उस कुतियासे ठिठोली करने लगे, पर वह कुतिया वहाँसे हटनेका नाम ही नहीं ले रही थी। उसी वक्त मन्दिरके पुजारी भी वहाँ आये और हमें उस कुतियाके बारेमें बताने लगे।

पुजारीने बताया कि जब कभी उस मन्दिरमें कोई भगवत्कथा होती है और नियत समयपर कथा आरम्भकी गूँज लाउडस्पीकरपर सुनायी पड़ती है, वह कुतिया तुरन्त ही वहाँ आकर उन्हीं सीढ़ियोंपर बैठ जाती है और कथा-समाप्तितक वहाँसे हिलनेका नाम नहीं लेती है, भले ही कोई कितनी भी कोशिश कर ले। इस दौरान वह न तो कोई आवाज करती है, न ही किसी तरहकी कोई गन्दगी करती है। हर आने-जानेवालोंको ऐसा लगता है, जैसे वह शान्तिपूर्वक और तन्मयताके साथ कथाका श्रवण कर रही है। उनके अनुसार अवश्य ही उस मूक प्राणीमें पिछले जन्मके संस्कार विद्यमान हैं, जिनकी बदौलत उसमें कथा-श्रवणमें इतनी गहरी रुचि देखी गयी है।

हम सभीने भी ईश्वर-रचित उस अद्भुत प्राणीको आदर भावसे निहारा। अपने मोबाइल फोनपर उसके साथ चित्र उतारे और भगवल्लीलाकी गहराईको नमन करते हुए अपने अगले गन्तव्यकी ओर निकल पड़े।

यह विलक्षण घटना हमें यह बोध कराती है कि प्रत्येक प्राणीमें वही परमात्मा स्थित है, जो हममें है; सिर्फ ऊपरी आवरणका ही अन्तर है। गोस्वामीजी कहते हैं—

किएहुँ कुबेष साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू॥

कुतिया-जैसी पशुयोनिमें रहनेवाली महान् आत्माका भगवत्प्रेम हम मनुष्योंके लिये भी अनुकरणीय है।

—कमल लड्ढा

(३)

कर्मयोगी सद्गृहस्थपर भगवत्कृपा

मेरे भाई साहबके जीवनके पचास वर्ष पूर्वकी यह घटना है। भाई साहब उन दिनों अजमेरमें काम करते थे। घरसे सुबह ८ बजे निकलते और शामको ७ बजे लौटते थे। पुनः हाथ-पैर धोकर और धोती-कुर्ता पहनकर दो अगरबत्ती लेकर वे दशहरा मैदानके बालाजी मन्दिरमें बे-नागा जाया करते थे। उन्हें मन्दिरसे लौटकर आनेमें डेढ़ घंटा लगता था। भोजनोपरान्त पत्नी-बच्चोंसे बात करते हुए वे हरि नाम-स्मरणके साथ निद्रादेवीकी गोदमें चले जाते थे।

उस दिन जब वे जाने लगे, तब वर्षा शुरू हो गयी थी। वे रुक गये, किंतु वर्षाका वेग बढ़ गया। प्रतीक्षा करते हुए जब १० बज गये, तो वे लपककर घरसे निकले, किंतु रास्ता तो जलमग्न हो चुका था। सड़कपर एक-एक फुट पानी बह रहा था। ज्यों-त्यों करके मन्दिर पहुँचे, मन्दिरकी चहारदीवारीके भीतर ढाई-तीन फुट पानी भरा था। पुजारी उनका परिचित था, उसने देखते ही लालटेन जलायी और दरवाजा खोला। बिजली उन दिनों मन्दिरमें नहीं थी, अभी वे हनुमानचालीसाका पाठ कर ही रहे थे कि वे तेजीसे उठे और घरकी ओर दौड़ पड़े। पुजारीके पूछनेपर भी वे कुछ नहीं बोले। हाँफते हुए घर आकर उन्होंने सोते हुए चार बच्चोंको बरामदेमेंसे उठाया और एक-एक करके उन्हें कमरेमें ले गये। चौथे बच्चेके ले जाते ही छतसे लगभग चालीस किलोका चूनेका छतका एक टुकड़ा धमाकेके साथ फर्शपर गिरा। पत्नी और पड़ोसी दौड़कर आये और सभी को देखने लगे। उन्होंने किसीके किसी प्रश्नका जवाब नहीं दिया। बस, केवल हरिनाम चलता रहा। रात्रिमें १ बजे बगैर भोजन किये हरिस्मरणके साथ उन्होंने निद्रादेवीकी गोदमें शरण ली।

दूसरे दिन मेरे पूछनेपर वे इतना ही बोले—हमारे प्रथम श्वासके साथ ही जो प्रभु वायु तथा दूधकी व्यवस्था कर रखते हैं, अपने भक्तोंकी प्रतिदिनकी आवश्यकताकी व्यवस्था करना भी वे भली प्रकार जानते हैं, अमृतके सागर दयानिधि मातासे भी बढ़कर दयालु हैं। **—गोपाल कृष्ण जिन्दल**

मनन करने योग्य

ब्रह्मचर्यव्रतका प्रभाव

गंगापुत्र पितामह भीष्म बड़े ही तेजस्वी, शीलवान्, अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले, ईश्वरके भक्त और महान् धर्मात्मा वीर पुरुष थे। उन्होंने अपने पिताकी सेवाके लिये क्षणमात्रमें कंचन और कामिनीका सदाके लिये त्याग कर दिया और उसके प्रतापसे उन्होंने कालको भी जीत लिया।

एक समय देवव्रत (पितामह भीष्म)-ने अपने पिता शान्तनुको शोकाकुल देखकर उनसे शोकका कारण पूछा, उन्होंने पुत्रवृद्धिके लिये विवाह करनेकी इच्छा प्रकट की। इस प्रकार अपने पिताके शोकका कारण जानकर बुद्धिमान् देवव्रतने अपने पिताके बूढ़े मन्त्रीके पास जाकर उनसे भी अपने पिताके शोकका कारण पूछा—तब मन्त्रीने धीवरराजकी (पालिता) कन्याके सम्बन्धके विषयकी सब बातें कहीं और धीवरराजकी इच्छाका वृत्तान्त भी सुनाया। तब देवव्रत बहुत-से क्षत्रियोंको साथ लेकर उस धीवरराजके पास गये और अपने पिताके लिये उस धीवरराजसे कन्या माँगी। धीवरराजने देवव्रतका विधिपूर्वक सत्कार किया और इस प्रकार कहा—देवव्रत! अपने पिताके आप बड़े पुत्र हैं और आप राजा होनेके योग्य हैं, किंतु मैं कन्याका पिता हूँ, इसलिये आपसे कुछ कहना चाहता हूँ। बात यह है कि इस कन्यासे जो पुत्र उत्पन्न हो, वही राजगद्दीपर बैठे, इस शर्तपर मैं अपनी कन्याका विवाह आपके पिताके साथ कर सकता हूँ, नहीं तो नहीं। उस दासराज (धीवरराज)-के वचनको सुनकर गंगापुत्र देवव्रतने सब राजाओंके सामने यह उत्तर दिया कि हे दासराज! तुम जैसा कहते हो, मैं वैसा ही करूँगा। यह मेरा सत्य वचन है, इसे तुम निश्चय ही मानो। इस कन्यासे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वही हमारा राजा होगा। तब धीवरराजने कहा—'हे सत्यधर्मपरायण! आपने मेरी कन्या सत्यवतीके लिये सब राजाओंके बीचमें जो प्रतिज्ञा की है, वह आपके योग्य ही है, आप इस प्रतिज्ञाका पालन करेंगे, इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है, किंतु आपके जो पुत्र होंगे—उनसे मुझे बड़ा सन्देह है—वे इस कन्याके पुत्रसे राज्य ले सकते हैं।' तदनन्तर गंगापुत्र देवव्रतने अपने पिताका प्रिय करनेकी इच्छासे दूसरी प्रतिज्ञा की। देवव्रत बोले—'हे दासराज! अपने पिताके लिये इन सब राजाओंके सामने मैं जो वचन कहता हूँ, उसको सुनो। (मैं राज्यको तो पहले त्याग ही चुका हूँ) आजसे मैं आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन करूँगा अर्थात् विवाह न करके आजीवन ब्रह्मचारी रहूँगा।' राजकुमार देवव्रतके ऐसे वचनोंको सुनकर बड़ी प्रसन्नतासे धीवरराज बोले—'हे देवव्रत! मैं यह कन्या आपके पिताके लिये अर्पण करता हूँ।' उस समय देवता और ऋषिगण बोले—'यह दुष्कर कर्म करनेवाला है, इसलिये यह भीष्म है।' ऐसा कहते हुए आकाशसे फूलोंकी वर्षा करने लगे। (तबसे गंगापुत्र देवव्रतका नाम भीष्म विख्यात हुआ।) उसके बाद भीष्मने अपने पिताके लिये उस धीवरराजकी यशस्विनी कन्या सत्यवतीसे कहा—'मातः! इस रथपर चढ़िये, हम लोग घर चलेंगे।' ऐसा कह उस कन्याको अपने रथमें बैठाकर हस्तिनापुर आये और उस कन्याको पिताको अर्पण कर दिया। उनके इस दुष्कर कर्मको देखकर सब राजालोग उनकी प्रशंसा करने लगे और यह कहने लगे—इसने बड़ा दुष्कर कर्म किया है। इस कारण हम सब इसका 'भीष्म' नाम रखते हैं।

जब राजा शान्तनुने सुना कि देवव्रतने ऐसा दुष्कर कार्य किया है, तो उन्होंने प्रसन्न होकर महात्मा भीष्मको अपने तपके बलसे स्वच्छन्द मरणका वर दिया। वे बोले—'हे निष्पाप! तुम जबतक जीवित रहना चाहोगे, तबतक मृत्युका तुम्हारे ऊपर कोई प्रभाव न होगा, तुम्हारी आज्ञा होनेपर ही तुम्हें मृत्यु मार सकेगी।' [महाभारत, आदिपर्व]

गीता-संग्रह [द्वितीय गुच्छक] एक साथ 15 गीताओंका संग्रह—

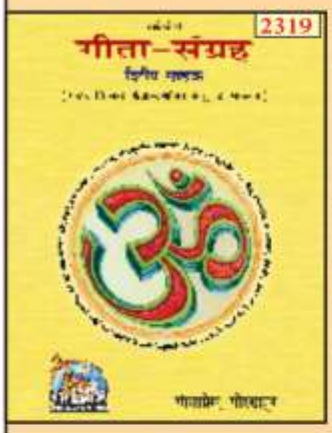

श्रीमद्भगवद्गीता गीताप्रेसके द्वारा विभिन्न भाष्यों, टीकाओंके साथ विभिन्न आकार-प्रकारमें प्रारम्भसे ही सतत प्रकाशित हो रही है, किन्तु अन्यान्य महत्त्वपूर्ण गीताएँ आज भी जनसामान्यके लिये दुर्लभ है। अन्यान्य गीताओंको भी पाठकोंको सहजतासे सुलभ करानेकी दृष्टिसे बहुत-सी गीताओंका संकलन किया जा चुका है, जिसका '**प्रथम गुच्छक**' (**कोड 1958**) **गीता-संग्रह [25 गीताओंका संग्रह एक जिल्दमें] मूल्य ₹120, डाकखर्च ₹ 50, पूर्वमें प्रकाशित किया जा चुका है।** इसी क्रममें गीता-संग्रहका '**द्वितीय गुच्छक**' जिसमें 15 गीताओंका संग्रह है—प्रकाशित हो रहा है। इन गीताओंमें शिवाराधनविधि, शिवतत्त्व, सांख्ययोग, शक्तिउपासना, अष्टांगयोग, मनोविकारोंको नाश करनेवाला तत्त्वोपदेश, अध्यात्मशिक्षा, निराशाग्रस्तजनोंका पथ-प्रदर्शक जीवन सूत्र, गर्भगत जीवात्माकी दशा एवं उसके प्रेरक सत्संकल्प, ज्ञान, भक्ति, कर्म, धर्माचार, मुक्ति आदिका विवेचन, योगाभ्यास, भगवद्भक्तोंके आत्मिक उद्‌गार आदिपर विशेष प्रकाश डाला गया है जो मानव-जीवनके लिये बड़े कामके हैं। (**कोड 2319**)

महाभारत (सटीक) कोड 728, ग्रन्थाकार—छः खण्डोंमें सेट— महाभारत भारतीय संस्कृतिका अद्भुत महाग्रन्थ है। इसे पंचम वेद भी कहा जाता है। इस महाग्रन्थमें उपनिषदोंका सार, इतिहास, पुराणोंका उन्मेष, निमेष, चातुर्वर्णका विधान, पुराणोंका आशय, ग्रह, नक्षत्र, तारा आदिका परिमाण, तीर्थों, पुण्य देशों, नदियों, पर्वतों, समुद्रों तथा वनोंका वर्णन होनेके कारण यह अत्यन्त गूढ़, गुह्य रत्नोंका भण्डार है। मूल्य ₹3000, डाकखर्च ₹450

महाभारतके विभिन्न खण्डोंका विवरण

कोड	खण्ड	विवरण	मू०₹	डाकखर्च
32	प्रथम खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, आदिपर्वसे सभापर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	500	90
33	द्वितीय खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, वनपर्वसे विराटपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	500	90
34	तृतीय खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, उद्योगपर्वसे भीष्मपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	500	90
35	चतुर्थ खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, द्रोणपर्वसे स्त्रीपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	500	90
36	पञ्चम खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, शान्तिपर्व, सचित्र, सजिल्द।	500	90
37	षष्ठ खण्ड	(सानुवाद) ग्रन्थाकार, अनुशासनपर्वसे स्वर्गारोहणपर्वतक, सचित्र, सजिल्द।	500	90

संक्षिप्त महाभारत (दो खण्डोंमें) कोड 39, 511, ग्रन्थाकार—मूल्य ₹680, डाकखर्च ₹ 100 (गुजराती, बँगला, तेलुगु भी)

महाभारत-सटीक (तेलुगु)-के सभी सात खण्ड उपलब्ध

कोड 2141—2147, मूल्य ₹2800

प्रत्येक खण्ड अलग-अलग भी उपलब्ध, प्रत्येक खण्डका मूल्य ₹400, डाकखर्च ₹90 अतिरिक्त

अप्रैल 2022 से मार्च 2023 तक प्रकाशित नवीन प्रकाशन

कोड	पुस्तक-नाम	मू. ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू. ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू. ₹
2295	चित्रमय श्रीरामचरितमानस	1600	2299	व्यवहार-दर्शन-पीयूष	20		**असमिया**	
2311	चित्रमय सुन्दरकाण्ड मूल, ग्रन्थाकार	150	2301	काशी-दर्शन	50	2298	गीता-तत्त्वविवेचनी	200
			2302	अयोध्या-माहात्म्य	100		**मराठी**	
2304	चित्रमय दुर्गासप्तशती, सटीक, ग्रन्थाकार	450		**मलयालम**		2305	श्रीरामकृष्ण परमहंस	20
			2316	श्रीमन्नारायणीयम्, सटीक	200		**तेलुगु**	
2296	गीतातत्त्वविवेचनी पदच्छेद-अन्वय सहित	300		**बँगला**		2303	श्रीगायत्रीरामायणमु	40
			2314	वास्तविक त्याग	20		**नेपाली**	
2297	श्रीमद्भगवद्गीता श्रीधरी टीका	100	2308	गीता-ज्ञान प्रवेशिका	40	2300	अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश	160

प्र० ति० 20-03-2023
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2023-2025
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE No. WPP/GR-03/2023-2025

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित ग्यारह उपनिषद्

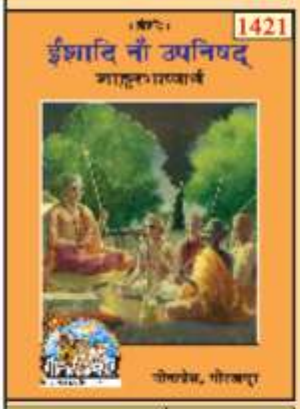

कोड 1421 / मू०₹280

ईशादि नौ उपनिषद् (कोड 1421)—गीताप्रेससे **शाङ्करभाष्य और भाष्यार्थ**के साथ अलग-अलग पुस्तकरूपमें पूर्व प्रकाशित ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय तथा श्वेताश्वतर उपनिषद्को इस पुस्तकमें पाठकोंके सुविधार्थ एक साथ प्रकाशित किया गया है। सजिल्द, मूल्य ₹280, डाक एवं पैकिंगखर्च ₹ 70 अतिरिक्त।

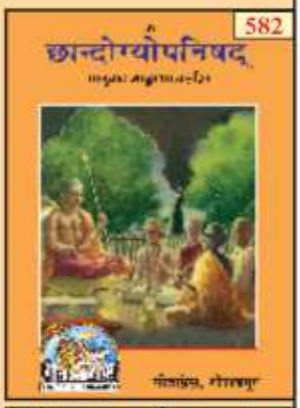

कोड 582 / मू० ₹170

छान्दोग्योपनिषद् (कोड 582)—सामवेदीय तलवकार ब्राह्मणके अन्तर्गत वर्णित इस उपनिषद्में क्रमबद्ध और युक्तिपूर्ण ढंगसे कर्म तथा ज्ञानका सजीव वर्णन है। तत्त्वज्ञान और उपासनाकी इसमें विस्तृत चर्चा है। शाङ्करभाष्य, सानुवाद, मूल्य ₹170 डाक एवं पैकिंगखर्च ₹50 अतिरिक्त।

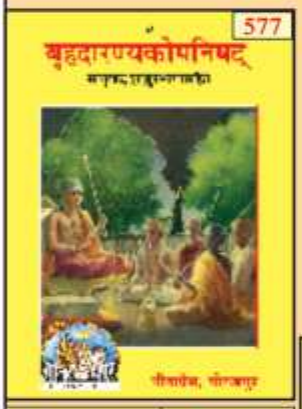

कोड 577 / मू० ₹ 280

बृहदारण्यकोपनिषद् (कोड 577)—यजुर्वेदके काण्वी शाखामें वर्णित यह उपनिषद् कलेवरकी दृष्टिसे बृहत् तथा वनमें अध्ययन किये जानेके कारण आरण्यक कहलाता है। शाङ्करभाष्य, सानुवाद, मूल्य ₹280 डाक एवं पैकिंगखर्च ₹70 अतिरिक्त।

नोट— ग्यारह उपनिषदोंका पूरा सेट मँगवानेके लिये पुस्तक मूल्य, डाक एवं पैकिंगखर्चसहित ₹920 भिजवायें। अलग-अलग उपनिषद् भी उपलब्ध हैं।

अब उपलब्ध

हिन्दू-संस्कृति-अङ्क (कोड 518)—यह विशेषाङ्क भारतीय संस्कृतिके विभिन्न पक्षों—हिन्दू-धर्म, दर्शन, आचार-विचार, संस्कार, रीति-रिवाज, पर्व, उत्सव, कला-संस्कृति और आदर्शोंपर प्रकाश डालनेवाला तथ्यपूर्ण बृहद् (सचित्र) दिग्दर्शन है। कुछ विद्वानोंने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है तो कुछने इसे 'हिन्दू-संस्कृतिका विश्वकोश' कहा है। भारतीय संस्कृतिके उपासकों, अनुसन्धानकर्ताओं और जिज्ञासुओंके लिये यह अवश्य पठनीय तथा उपयोगी दिशा-निर्देशक है। इस अंकमें परिशिष्टाङ्ककी सामग्री समायोजित कर दी गयी है जिससे यह और भी उपयोगी बन गया है। मूल्य ₹ 400, डाक खर्च ₹90 अतिरिक्त।

e-mail : booksales@gitapress.org—थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
Gita Press web : gitapress.org—सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।
गीताप्रेसकी पुस्तकें Online कूरियर/डाकसे मँगवाने के लिये—
www.gitapress.org; gitapressbookshop.in

If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)